सद्गुरवे नमः

सद्गुरु कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

वर्ष 53 | अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर 2023 | अंक 2

रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय।।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 60.00
एक प्रति : 16.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1600.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
कबीर गर्व न कीजिये	सद्गुरु कबीर	1
गुरुवाणी अपनाव	राधाकृष्ण कुशवाहा	6
गीत भजन	हेमंत हरिलाल साहू	19
खो गया है आदमी	श्री सीताराम सिंह विश्वबंधु	24
जीवन है संग्राम	रामनिवास वर्मा	32
ध्याननिष्ठ हो रहें सदा	श्रीमती मीना जैन	35

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 13 परमार्थ पथ / 29
बीजक चिंतन / 33

लेख

उत्तेजना के क्षणों में	श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट	7
सुभाषित	साध्वी सुबुद्धि	11
सद्गुरु कबीर की सहज साधना	विवेकदास	16
अपने स्वरूप की याद करो	धर्मेन्द्र दास	20
जो जन्मते हैं, पर मरते नहीं	डॉ. रामचरण महेन्द्र	25
मौत से डरता नहीं मैं	प्रो. रमाकान्त दीक्षित	31
शरीर का अहंकार मिथ्या है		42

कहानी

गांव का दर्द	श्री भावसिंह हिरवानी	36

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या—*(प्रथम खण्ड : चौबीसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : बाईसवां संस्करण)*—बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य—प्रथम खण्ड 325 रु०, द्वितीय खण्ड 325 रु०।

कबीर संस्थान के नये प्रकाशन

1. धरती पर स्वर्ग : लेखक—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब—प्रायः लोग मरने के पश्चात स्वर्ग जाने की कामना करते हैं और मानते हैं कि स्वर्ग कहीं आकाश में है, परंतु यह सिर्फ एक कल्पना है। प्रस्तुत पुस्तक 'धरती पर स्वर्ग' में यह बताया गया है कि प्राणिमात्र के साथ दया, करुणा तथा प्रेमपूर्ण सद्गुण-सदाचारमय व्यवहार-आचरण करके इसी धरती को स्वर्ग से सुंदर बनाया जा सकता है। यह पुस्तक पूज्यवर सद्गुरु अभिलाष साहेब जी के प्रवचनों का संकलन है। मूल्य–150 रुपये।

2. जीवन जीने की कला : लेखक—धर्मेन्द्र दास—प्रेम जीवन जीने की सर्वोत्तम कला है। प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न ढंग से यह बताया गया है कि मिठाई में जो स्थान शकर का है, भोजन में जो स्थान नमक है, आपसी जीवन व्यवहार में वही स्थान प्रेम का है। प्रेमपूर्ण व्यवहार से मनुष्य अपने जीवन को तथा अपने घर-परिवार को नंदन-कानन तथा स्वर्गमय बना सकता है। मूल्य–120 रुपये।

3. आत्म विकास के साधन : लेखक—धर्मेन्द्र दास—वैज्ञानिक एवं भौतिक विकास की दौड़ में मनुष्य अध्यात्म को यानी भुला दिया है या तो नजरअंदाज कर दिया है । जबकि हकीकत यह है कि आध्यात्मिक विकास के बिना कोई भी भौतिक विकास मनुष्य को कभी मानसिक प्रसन्नता एवं शांति-सुख का अनुभव नहीं करा सकता । आध्यात्मिक विकास के लिए क्या-कौन-सा साधन अपेक्षित है, 'आत्म विकास के साधन' नामक इस पुस्तक में इसी विषय का वर्णन है। मूल्य–100 रुपये।

4. संत कबीर का मानव धर्म : लेखक—धर्मेन्द्र दास—सद्गुरु कबीर की एकमात्र मंशा यही थी कि मनुष्य अपने बनाये जाति-वर्ण-वर्ग तथा मत-मजहब-संप्रदाय जनित घेरे से निकले और अहं-हीनत्व की भावना त्यागकर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से मनुष्य बनकर मिले और मनुष्यता का व्यवहार करे। सद्गुरु कबीर का धर्म मानव धर्म है और मानव धर्म ही सर्वोपरि धर्म है, इसी तथ्य को 'संत कबीर का मानव धर्म' नामक इस पुस्तक में निरूपित किया गया है। मूल्य–90 रुपये।

5. मुक्ति का प्रवेश द्वार : लेखक—धर्मेन्द्र दास—जाने-अनजाने हर व्यक्ति के मन में मुक्ति या मोक्ष की अभिलाषा रहती है। मुक्ति या मोक्ष का अर्थ है दुख-बंधन-परतंत्रता से छुटकर मन का हर समय शांत-संतुष्ट-तृप्त रहना और यह मरने के बाद की स्थिति नहीं है किंतु इसी जीवन की स्थिति है। और यह स्थिति आत्मज्ञान प्राप्त कर सबसे निस्स्वार्थ सेवा एवं प्रेम का व्यवहार करते हुए सबसे सब समय निर्मोह, निष्काम एवं अनासक्त रहने से प्राप्त होती है। 'मुक्ति का प्रवेश द्वार' नामक इस पुस्तक में इसी तथ्य का निरूपण किया गया है। मूल्य-100 रुपये।

6. सत्संग और साधना : लेखक—धर्मेन्द्र दास—सत्संग का परिनिष्ठित अर्थ है—सत्य का संग। परम सत्य मनुष्य का अपना आपा, स्व चेतन सत्ता है। अतः अपनी आत्मा में लौट आना, आत्मस्थित हो जाना ही सत्संग है और इसके लिए साधना की आवश्यकता होती है। साधना का अर्थ है ऐसा आचरण, ऐसी रहनी जिससे मन के विकार, चंचलता-बहिर्मुखता मिटकर मन निर्मल-निर्विकार होकर संयत-अंतर्मुख हो जाये। इस पुस्तक में इसी विषय का वर्णन किया गया है। मूल्य-120 रुपये।

7. सुख-समृद्धि की 100 कहानियां : लेखक—हीरेन्द्र दास—कहानियां चाहे काल्पनिक हों चाहे सत्य घटनाओं पर आधारित उनमें प्रेरणा एवं शिक्षा होती हैं तथा लोकहित की भावना निहित होती है। इसी लोकहित की भावना रखकर लेखक ने इसमें 100 कहानियों का संकलन किया है। जो प्रेरक भी हैं और मार्मिक भी। मूल्य–75 रुपये।

8. मुक्ति का मार्ग (पद्य संग्रह) : लेखक—हीरेन्द्र दास—इस पुस्तक में लेखक द्वारा रचित 150 पदों का संकलन है। मूल्य–65 रुपये।

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज

का

छियालीसवां वार्षिक अधिवेशन

दिनांक — 26-27-28 अक्टूबर 2023

दिन — गुरूवार, शुक्रवार, शनिवार

क्वार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा

स्थल- कबीर आश्रम, कबीर नगर, प्रयागराज

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है । यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 16 रुपये | वार्षिक 60 रुपये | आजीवन 1600 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज 211011

उत्तर प्रदेश

Vist us : wwwkabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

प्रेम पाट का चोलना, पहिर कबीरू नाच।
पानिप दीन्हों तासु को, जो तन मन बोले साँच॥ बीजक, साखी 58॥

वर्ष 53] प्रयागराज, क्वार, वि. सं. 2080, अक्टूबर 2023, सत्कबीराब्द 625 [अंक 2

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानो कित मारिहैं, क्या पर क्या परदेश॥

कबीर गर्व न कीजिये, इस जोबन की आस।
टेसू फुला दिवस दस, खंखर भया पलास॥

कबीर यह संसार है, जैसा सेमल फूल।
दिन दस के व्यवहार में, झूठे रंग न भूल॥

कबीर जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल।
चेति सकै तो चेत ले, मीच परी है ख्याल॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साधु की, कै गुरु के गुन गाव॥

कबीर रसरी पाँव में, कहँ सोवत सुख चैन।
साँस नगारा कूच का, बाजत है दिन रैन॥

रात गँवाई सोयकर, दिवस गँवाया खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥

आये हैं सो जायेंगे

सद्गुरु कबीर की विश्वप्रसिद्ध साखी है—

आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बंधे जात जंजीर॥

इस दुनिया में जन्म लेकर जो भी आता है, चाहे वह राजा हो या रंक और चाहे फकीर-साधु-संन्यासी, एक दिन सबको यह दुनिया छोड़कर जाना होता है। कोई यहां सदा रहने के लिए नहीं आता। हां, जाना तो सबको होता है, परन्तु जाने-जाने में अंतर होता है। एक आदमी सिंहासन पर बैठकर जाता है और एक दूसरा जंजीर से बंधकर।

इस साखी में सद्गुरु कबीर मुख्य दो बातों पर प्रकाश डालते हैं और ये दोनों बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। पहली बात है शरीर की नश्वरता, मरणधर्मिता और दूसरी बात है मनुष्य जीवन में अच्छे-बुरे जो कुछ भी कर्म करता है उसका परिणाम!

दुनिया में धर्म के क्षेत्र में अनेक लोगों की यह मान्यता और विश्वास है कि अमुक ऋषि-मुनि, योगी-संन्यासी, संत-गुरु, देवी-देवता, भगवान-भगवती आज भी सशरीर अमर हैं और उनको पुकारने से, उनका भजन-सुमिरन करने से वे सशरीर आकर अपने भक्तों को दर्शन देते हैं, उनका मार्गदर्शन करते हैं, विपत्तियों से उनकी रक्षा करते हैं। परन्तु यह मान्यता एवं विश्वास केवल भावुकता एवं अंधविश्वास है। जो शरीर छोड़कर इस दुनिया से चले गये हैं वे उसी रूप में अब कभी वापस नहीं आ सकते। उनका शरीर सड़-गलकर मिट्टी में मिल गया है या चिता में जलकर राख बनकर उड़ गया है। फिर वे उसी रूप में वापस कैसे आ सकते हैं।

नाम चाहे किसी का कुछ भी हो या कुछ भी रख लिया जाये सबका शरीर मरणधर्मा है, किसी का शरीर अमर नहीं हो सकता। जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी, यह प्रकृति का अटल नियम है। इस नश्वर संसार में केवल रोगी-बीमार की ही मौत नहीं होती विश्वप्रसिद्ध डॉक्टर, वैद्य और हकीम को भी मौत के मुख में जाना होता है। वैद्य, हकीम और डॉक्टरों के दवाखाना एवं दवा, जड़ी-बूटी धरे रह जाते हैं और वे काल के गाल में समा जाते हैं। योगासन, प्राणायाम, यौगिक क्रियाओं, साधना-तपस्या द्वारा जीवन की अवधि को बढ़ाया जा सकता है, यह भी भ्रम ही है। पुराणों तथा महाकाव्यों में भले ही लिखा है कि अमुक ऋषि-मुनि, योगी-महात्मा, राजा-महाराजा हजारों, लाखों, करोड़ों एवं अरबों वर्षों तक जीवित रहे, परन्तु यह सर्वथा काल्पनिक है और झूठा कथन है। अधिकतम लोग 100 वर्ष के अंदर ही दुनिया से विदा हो जाते हैं। कुछ ही लोग होते है, जो 100 वर्ष से अधिक आयु तक जीवित रहते हैं, परन्तु एक दिन उन्हें भी दुनिया से जाना होता है।

वाल्मीकीय रामायण में कहा गया है—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ता समुच्छ्राया।
संयोगा विप्रयोगान्तं मरणान्तं हि जीवितम्॥

अर्थात सभी संग्रहों का अन्त विनाश है, उन्नति का अन्त पतन है, सारे संयोगों का अन्त वियोग है तथा जन्म का अन्त मृत्यु है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जो उगे सो आथवे, फूले सो कुम्हिलाय।
जो चुने सो ढहि परे, जन्मे सो मरि जाय॥

अर्थात सूर्य, चंद्रमा एवं तारे उगते हैं तो कुछ घंटों के पश्चात अस्त हो जाते हैं, फूल खिलते हैं तो शाम तक कुम्हला कर झड़ जाते हैं, जो मकान बनाया जाता है वह एक दिन खंडहर हो जाता है और जो जन्म लेता है वह एक दिन मर जाता है।

उक्त कथन निराशा उत्पन्न करने वाला नहीं है, अपितु दुनिया की हकीकत एवं क्षणभंगुरता-नश्वरता का दिग्दर्शन है तथा लोगों के मन में जागरूकता उत्पन्न कर

जीवन को समुचित ढंग से जीने की प्रेरणा देने वाला है। पूरी प्रकृति में कारण-कार्य की एक व्यवस्था तथा नियम है। यह व्यवस्था और नियम सभी निर्मित जड़ निर्जीव वस्तुओं और सजीव शरीरधारी प्राणियों पर समान रूप से लागू होते हैं। इसमें किसी के लिए कोई पक्षपात नहीं है। इस व्यवस्था एवं नियम में किसी के लिए कृपा और कोप भी नहीं है, क्योंकि यह किसी चेतन या अतिचेतन द्वारा बनाया गया नहीं है, अपितु यह प्राकृतिक एवं स्वयंभू स्वचालित व्यवस्था एवं नियम है।

हर निर्मित वस्तु का विनाश अवश्यंभावी है। शरीर भी निर्मित है इसीलिए उसका भी विनाश निश्चित है। चाहे कुछ भी उपाय कर लिया जाये शरीर अमर हो नहीं सकता, शरीर तो मरणधर्मा है। हां, शरीर में निवास करने वाला चेतन-जीव अमर है, परन्तु उस अमर चेतन-जीव को स्वयं अपने आप का ज्ञान न होने के कारण उसने अपने आप को शरीर मान लिया है और इसीलिए वह सशरीर अमर होने की कल्पना एवं आशा करता है और मृत्यु से डरता है।

मृत्यु से डरने के मुख्य दो कारण हैं—पहला शरीर और जीव दोनों को एक मान लेना या शरीर को ही अपना स्वरूप मान लेना और दूसरा सांसारिक प्राणी-पदार्थों के प्रति अहंता-ममता तथा विषय भोगों के प्रति आसक्ति। वास्तविकता यह है कि शरीर और चेतन-जीव मौलिक रूप में दोनों नितांत अलग-अलग हैं। दोनों कभी एक हो नहीं सकते, क्योंकि जड़ भौतिक तत्त्वों से निर्मित शरीर निरा जड़ है और चेतन ज्ञान-गुण संपन्न अभौतिक है। इस अनंत ब्रह्माण्ड में जितने भी जड़ तत्त्व हैं उनका नाम चाहे कुछ भी रख लिया जाये किसी जड़ तत्त्व में चेतना एवं ज्ञान-गुण नहीं है और मूल कारण तत्त्वों में जो गुण नहीं होगा वह गुण उनसे निर्मित कार्य-पदार्थों में नहीं आ सकता, क्योंकि यह नियम है कि 'कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः' अर्थात कारण के गुणपूर्वक ही कार्य में गुण देखे जाते हैं। परन्तु संसार में सब का यह अनुभव है कि चेतना एवं ज्ञान गुण सभी प्राणियों में दिखाई पड़ते हैं। अब प्रश्न यह है कि जब मूल कारण जड़ भौतिक तत्त्वों में चेतना एवं ज्ञान गुण नहीं है तब यह आया कहां से और यह किस तत्त्व का गुण है। कोई भी गुण शून्याकाश में तो तैरेगा नहीं, उसके लिए एक गुणी द्रव्य चाहिए। उसी गुणी द्रव्य या तत्त्व को जीव, चेतन, आत्मा, रूह, सोल आदि कहा जाता है। जिस प्रकार मूल भौतिक द्रव्य-तत्त्व उत्पत्ति-विनाश रहित अनादि-अनंत है उसी प्रकार चेतन जीव भी उत्पत्ति-विनाश रहित अनादि-अनंत है। न जड़ भौतिक तत्त्वों से चेतन जीव बना है और न चेतन-जीव से जड़ तत्त्व प्रकट हुए हैं।

इस प्रकार जड़ शरीर और चेतन जीव की मौलिक रूप से भिन्नता का स्पष्ट रूप से बोध-ज्ञान हो जाने के उपरांत त्याग-तप, संयम-साधना एवं वैराग्य के अभ्यास द्वारा जब सांसारिक प्राणी-पदार्थों की अहंता-ममता एवं विषय-भोगों की आसक्ति का त्याग कर दिया जायेगा तब मृत्यु का भय अपने आप समाप्त हो जायेगा। शरीर और जीव की मौलिक भिन्नता का ज्ञान-बोध हो जाने पर शरीर को अमर बनाने की दुराशा और अमुक-अमुक ऋषि-मुनि, योगी-तपी, देवी-देवता सशरीर अमर हैं यह कल्पना एवं भ्रम स्वतः मिट जायेंगे, क्योंकि तब यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायेगा कि जड़ तत्त्वों से निर्मित शरीर को अंततः उन्हीं जड़ तत्त्वों में मिल जाना है। इसे किसी भी प्रकार से स्थायी और अमर नहीं बनाया जा सकता।

प्रस्तुत साखी में सद्गुरु कबीर यही बताते हैं कि चाहे कोई राजा-रंक, फकीर-औलिया, पीर-पैगंबर तथा देवी-देवता नामधारी क्यों न हो जो जन्म लेकर दुनिया में आया है उसे एक न एक दिन मरकर दुनिया से चले जाना ही होगा। यह नियम सदाकाल से चलते आ रहा है और सदाकाल तक चलता रहेगा। यह कभी रुकने वाला नहीं है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

मुवा है मरि जाहुगे, मुये कि बाजी ढोल।
सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगौ बोल॥

अर्थात जैसे पहले के लोग मरकर चले गये ऐसे तुम भी एक दिन मर जाओगे। मुरदा चाम का ही ढोल

बनकर बजता है। एक दिन आज के सभी संगी-साथी सपने में मिले हुए प्रेमियों के समान हो जायेंगे। तुम्हारे किये हुए अच्छे-बुरे कर्म सुकीर्ति-अपकीर्ति के रूप में तुम्हारी पहचान बनकर रह जायेंगे। इसलिए जीवन को बहुत सावधानीपूर्वक जीयो और ऐसे कर्म करो जो तुम्हारे लिए सुखद-शांतिप्रद हो और दूसरों के लिए सन्मार्ग की तरफ प्रेरणादायी हो।

इस दुनिया से तो सबको जाना है। परंतु जाने-जाने में बड़ा फर्क होता है। एक जाना होता है सिंहासन पर बैठकर और एक जाना होता है जंजीरों से बंधकर। सिंहासन पर बैठकर या तो राजा-महाराजा जाते हैं या कोई प्रतिष्ठित-सम्मानित व्यक्ति और जंजीरों से बंधकर जाने वाले अपराधी-अराजक होते हैं। दुनिया से अधिकतम लोग जंजीरों से बंधकर ही जाते हैं, सिंहासन पर बैठकर तो इक्का-दुक्का लोग ही जाते हैं।

प्रश्न होता है यह सिंहासन और जंजीर क्या है। क्या कबीर साहेब पौराणिक ढंग से कह रहे हैं जहां प्रायः कहा गया है कि अमुक भक्त या तपस्वी की भक्ति या तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ऊपर आकाश में स्थित अपने लोक या धाम से सिंहासन पर बैठकर आये और उस भक्त या तपस्वी को सिंहासन पर बैठाकर अपने साथ अपने लोक या धाम में ले गये और अमुक पापी का जब शरीर छुटने का वक्त आया तब यमराज स्वयं या यमराज के दूत मोटी-मोटी जंजीर लेकर आये और उस पापी को जंजीरों से बांधकर घसीटते हुए यमलोक को ले गये और नरक में धकेल दिये? इस ढंग की पुराणों में अनेक कहानियां लिखी गयी हैं। हो सकता है कि ये कहानियां लोगों को पापकर्मों से बचाकर सन्मार्ग-पुण्य कर्म की तरफ प्रेरणा देने के उद्देश्य से लिखी गयी हों, परन्तु हैं निरी काल्पनिक, झूठी एवं अतिरंजित। इन कहानियों ने लोगों को सन्मार्ग की तरफ प्रेरित तो कम किया भ्रमित करने का काम ज्यादा किया। ऊपर आकाश में न कोई स्वर्गलोक या यमलोक है और न वहां किसी भगवान या यमराज का निवास है। आकाश में कोई स्वर्ग-नरक है और वहां देवी-देवता या भगवान-भगवती का निवास होता है, यह कुछ चतुर-चालाक लोगों द्वारा गढ़ी गयी कल्पना है।

न तो आकाश से किसी के लिए कोई सिंहासन आता है और न कोई जंजीर आती है। फिर कबीर साहेब कैसे कह रहे हैं कि 'एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बंधे जात जंजीर।' कबीर साहेब की यह विशेषता रही है कि वे प्रायः रूपकों और अन्योक्तियों में अपनी बात कहते हैं। कबीर साहेब का वैष्णव संतों एवं भक्तों से गहरा संपर्क रहा है, इसलिए उन्होंने उस समय प्रचलित वैष्णव शब्दावलियों का प्रयोग अपनी वाणियों में खूब किया है, और उदाहरण भी उन्हीं से लिया है, परन्तु अर्थ अपना दिया है। यहां स्थूल सिंहासन और जंजीर की बात नहीं है। यहां सिंहासन और जंजीर का प्रयोग मनुष्य के मन की आंतरिक स्थिति एवं अच्छे-बुरे, पुण्य-पाप कर्मों के संस्कारों के लिए है।

मनुष्य शरीर कर्मभूमिका है। हर मनुष्य जागृत काल में हर समय शारीरिक एवं मानसिक कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है। बिना कर्म किये मनुष्य रह नहीं पाता। शारीरिक रूप से स्थूल कर्म नहीं करता तब उस समय भी वह मन से शुभाशुभ कुछ न कुछ करता ही रहता है। बाहरी रूप से कुछ समय पश्चात कर्म करना रुक जाता है परन्तु उनके शुभाशुभ छाप-संस्कार अन्तःकरण पर पड़ जाते हैं। यही संस्कार मनुष्य के सुख-दुख के कारण बनते हैं और यही सिंहासन तथा जंजीर बनाते हैं।

कर्म दो प्रकार के होते हैं एक पाप, दूसरा पुण्य। सामान्य रूप से पाप-पुण्य कर्म को इस प्रकार समझ सकते हैं। जिस कर्म को करते समय तथा करने के बाद मन भयभीत हो, जिस कर्म से दूसरों को दुख, पीड़ा, असुविधा मिले एवं पारिवारिक-सामाजिक मर्यादा-नियम का उल्लंघन हो वह कर्म पाप कर्म है। इसके विपरीत जिस कर्म को करते समय, करने के बाद मन निर्भय, निश्चिंत-प्रसन्न हो, जिससे दूसरों को सुख, सुविधा, प्रसन्नता मिले, वह कर्म पुण्य कर्म है। पाप-

पुण्य जो भी कर्म मनुष्य करता है कुछ पाने की इच्छा-कामना रखकर ही करता है। जितना संभव हो मनुष्य को पाप कर्मों से बचकर पुण्य कर्म ही करना चाहिए। यदि पुण्य कर्म न कर मिले तो शक्ति चले तक स्वयं को पाप कर्म से बचाकर रखे, क्योंकि कोई भी मनुष्य अपने लिए दुख नहीं चाहता।

रही बात सिंहासन और जंजीर की तो पाप कर्मों के संस्कार तो जंजीर बनाते ही हैं, पुण्य कर्मों के संस्कार सुख के कारण होते हुए भी अंततोगत्वा वे भी जंजीर ही बनाते हैं। कहा गया है—'पाप पुण्य दोनों बेड़ी। एक लोहा एक सोना केरी।' पुण्य कर्म करते हुए यदि मन अशांत-तनावग्रस्त है तथा और-और की चाहना-तृष्णा में डूबा हुआ है तो वह जंजीर का ही तो कारण हुआ। छोटा-बड़ा जो भी पाप कर्म है मनुष्य सकाम भावना रखकर ही करता है। यदि पुण्य कर्म भी सकाम भावना से किये जा रहे हैं तो वह भी जंजीर बनाने का काम करेगा न कि सिंहासन बनाने का। सकाम भावना रखकर काम करने वाला मनुष्य कभी शांत-संतुष्ट रह नहीं सकता। उसका मन सदैव अशांत-असंतुष्ट ही रहेगा और मन का अशांत, असंतुष्ट, चिंताग्रस्त रहना ही तो जंजीर है।

पाप कर्म तो करना ही नहीं है, जो करना है पुण्य कर्म ही करना है। पुण्य कर्म दो प्रकार से किये जाते हैं, एक सकाम भाव से कुछ पाने की इच्छा रखकर और दूसरा निष्काम भाव से सेवा-कर्तव्य समझकर, जिसमें केवल दूसरों का हित हो। सकाम भाव से किये जाने वाले पुण्य कर्म से लौकिक सुख-सुविधा, समृद्धि तो मिल सकती है, परन्तु वह मन की शांति, तृप्ति एवं दुख निवृत्ति के साधन नहीं हो सकते। इसलिए सकाम भाव से किये जाने वाले पुण्य कर्म भी अंततोगत्वा जंजीर ही बनाते हैं।

पूर्ण मानसिक दुख निवृत्ति एवं शांति, तृप्ति, संतुष्टि रूपी सिंहासन पर बैठकर जाने की इच्छा रखने वाले हर मनुष्य का कर्तव्य है कि वह औषधिवत जीवननिर्वाह लेते हुए लोकमंगल के लिए किये जाने वाले सभी कर्मों को निष्काम भाव से ही करे। कहीं किसी से किसी वस्तु की कामना न करे, न रखे।

भ्रमरहित स्वरूपबोध हो जाने के पश्चात विवेकपूर्वक संयम-साधना द्वारा जब मन को शोधकर पूर्ण निर्मल-निर्विकार बना लिया जाता है और सबसे सेवाभाव रखकर प्रेमपूर्वक मधुर व्यवहार करते हुए मन निष्काम, अनासक्त, निर्मोह, निर्लोभ हो जाता है और सारी चंचलता एवं बहिर्मुखता छोड़कर अंतर्मुख होकर आत्मलीन-स्वरूपस्थ हो जाता है, तब यही आत्मलीनता एवं स्वरूपस्थिति ही वास्तविक सिंहासन है। इस सिंहासन पर बैठकर जाने वाले लाखों में कोई एक होता है। उसी का मानव जीवन पाना सार्थक होता है। यह आत्मलीनता-स्वरूपस्थिति ऐसा सिंहासन है जो इस पर एक बार बैठ जाता है, फिर उससे उसे न कोई उतार सकता है और न कोई उसे छिन सकता है।

यह आत्मलीनता और स्वरूपस्थिति रूपी सिंहासन की बात सबकी समझ में नहीं आ सकती और यदि समझ में आ भी जाये तो सब लोग इस सिंहासन पर बैठकर जाने की साधना भी नहीं कर सकते, परन्तु मन की अशांति, चंचलता एवं मलिनता रूपी जंजीर तथा मन की शांति, स्थिरता एवं निर्मलता-निर्विकारता रूपी सिंहासन की बात तो सबकी समझ में आ सकती है और मन की मलिनता एवं चंचलता रूपी जंजीर को काटकर मन की निर्मलता एवं स्थिरता रूपी सिंहासन बनाने का काम हर आदमी कर सकता है।

दिन भर अनेक स्वभाव-संस्कार के लोगों से मिलते-जुलते एवं बात-व्यवहार करते तथा जीवन निर्वाह के काम करने के पश्चात यदि रात में सोते समय मन चिंता, विषाद, शिकायत, पीड़ा से भरा हुआ एवं तनावग्रस्त है, करवट बदल रहे हैं नींद नहीं आ रही है, तो समझ लेना होगा कि आज मैंने अपने लिए जंजीर बनाने का काम किया है और वही जंजीर मुझे न चैन से जीने दे रही है और न चैन से सोने दे रही है। इसके विपरीत लोगों से मिलते-जुलते बात-व्यवहार तथा जीवन निर्वाहिक काम-धंधा करते हुए मन प्रसन्न, शांत,

संतुष्ट, निश्चिंत, निर्भय, सभी प्रकार के तनावों से रहित है तो सिंहासन बनाने का काम किया गया है।

जीवन निर्वाह की चीजें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हुए और बहुत कुछ पूजा-पाठ, भक्ति-धर्म, संयम-साधना, ध्यान-चिंतन आदि करते हुए मन शांत, संतुष्ट, प्रसन्न, निश्चिंत, निर्भय नहीं हुआ तो सब कुछ करना निरर्थक ही तो हुआ। और यदि मन शांत, संतुष्ट, प्रसन्न, निश्चिंत, निर्भय है तो कमी क्या है। वस्तुओं की कमी-बेशी से बाहरी सुविधा-असुविधा में सरलता-कठिनता हो सकती है, किन्तु इससे मन की शांति-अशांति, प्रसन्नता-अप्रसन्नता, सुख-दुख, निर्मलता-मलिनता में कोई फर्क नहीं पड़ता; बस समझ-विवेक ठीक होना चाहिए।

सार यह है कि दुनिया से एक दिन सबको जाना होगा, इसमें किसी के लिए कोई छूट नहीं है। परन्तु दुनिया से जाते समय यदि मन में शरीर-संसार के प्राणी-पदार्थों के प्रति आसक्ति-कामना, अहंता-ममता, विषय-भोग की लालसा बनी हुई है और मन अशांत, उद्विग्न, पीड़ित, भयभीत, असंतुष्ट एवं तनावग्रस्त बना हुआ है तो ऐसा आदमी जंजीर से बंधकर जा रहा है। इसके विपरीत मन सभी प्रकार की आसक्ति-कामना, अहंता-ममता, विषयभोग की लालसा से पूर्णतः रहित शांत, संतुष्ट, प्रसन्न, निर्भय, निश्चिंत, निर्मल तथा अंतर्मुख है तो ऐसा आदमी सिंहासन पर बैठकर जा रहा है।

इस जंजीर से न कोई दूसरा किसी को बांध सकता है और न कोई दूसरा इसे काट सकता है। इसी प्रकार उक्त सिंहासन पर न कोई किसी को बिठा सकता है और न कोई उससे उतार सकता है। अपने लिए जंजीर बनाना है या सिंहासन बनाना है हर आदमी पूर्ण स्वतंत्र है। अपनी इस स्वतंत्रता का सदुपयोग कर बनी हुई जंजीर को काटने एवं सिंहासन बनाने में ही समझदारी है। जंजीर बनाना जीवन की हार है और सिंहासन बनाना जीत। चुनाव हमारा-आपका है।

—धर्मेन्द्र दास

गुरुवाणी अपनाव

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

पारस पारस न करे, लोहहिं स्वर्ण कराय।
न्यारी महिमा गुरु की, शिष्यहिं गुरु बनाय॥ 1॥

ज्यों कण्ठे को सखी ने, बता मिटायो पीर।
त्यों सद्गुरु दीन्हों लखा, अन्तर्घट में हीर॥ 2॥

किसी पंथ में ह्वै रहे, रखे हंस आचार।
सत्य का मोती तब मिले, जब निष्पक्ष विचार॥ 3॥

मन को ऐसा धूनिए, निकले कसर व खोट।
बन जा किला अभेद्य सा, लगे न कबहूँ चोट॥ 4॥

जितना डूबे राग में, उतनी पीड़ा जाग।
नहीं राग पीड़ा नहीं, यही गुणा व भाग॥ 5॥

गलत सोच वाणी गलत, गलत कर्म व्यापार।
इनकी बनती खूटियाँ, चुभती बारम्बार॥ 6॥

ऐ मधुकर! रस लोभिया, पुष्पन मत घुस जाहि।
बँधेगा इक दिन लोभ में, सुमनन सम्पुट माहिं॥ 7॥

सुन्दर रूप कुरूप हो, या अनूप का खेल।
अग्नि वारि मिट्टी पवन, नभ ही का है मेल॥ 8॥

इस तन पर क्या गर्वते, भरा है अवघट चीज।
नौ द्वारे से छोड़ता, देखो मात्र गलीज॥ 9॥

गुरु पोथी अरु परम्परा, कभी न मेड़ बनाव।
कट्टरता को त्याग कर, गुरुवाणी अपनाव॥10॥

प्रभु को पाना चाहते, प्रभु के गुण को धार।
कर्मकाण्ड तक रह गये, समझें श्रम बेकार॥11॥

पूजा करते थक गये, दर्शन हुआ न पूर।
भ्रम का पर्दा टार देख, ठाढ़े आप हजूर॥12॥

दिल तरकश में धारिए, पुष्प बाण संजोय।
सदा मृदुल व्यवहारिए, वाणी बाण न होय॥13॥

सोना हीरा कीमती, उनका निश्चित मोल।
आत्मज्ञान वह तत्त्व है, जिस का मोल न तोल॥14॥

उत्तेजना के क्षणों में

(क्रोध, कारण और निवारण)

लेखक—श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट

'क्रोध पाप कर मूल!'

जानता हूं कि क्रोध बड़ी बुरी चीज है।

क्रोध के चलते क्या नहीं होता?

तुलसी बाबा ने कहा है—

'क्रोध के परुष बचन बल!'

परंतु मुझ पर जब क्रोध सवारी गांठता है तब जुबान से जहर ही उगलकर शान्त नहीं हो जाता, मैं मार-पीट पर भी आमादा हो जाता हूं। हाथ-पैर भी चला बैठता हूं और कभी-कभी तो उसका दौरा इतना तेज होता है कि हाथ में छुरा हो तो खून कर बैठूं, पिस्तौल हो तो क्रोध के पात्र को गोली से उड़ा दूं। वश चले तो उसका अस्तित्व ही पृथ्वीतल से उड़ा दूं!

× × ×

कहावत है—**'कम कूवत रिस ज्यादा!'**

दुर्बल व्यक्ति को बहुत तेज गुस्सा आता है। बूढ़ों और बीमारों का चिड़चिड़ापन प्रसिद्ध ही है।

शायद दुर्बल काया के कारण ही मुझे क्रोध अधिक आता हो!

पर मैंने देखा है कि मोटे-तगड़े, हट्टे-कट्टे व्यक्ति भी क्रोध के शिकार बनते हैं और कभी-कभी उनका क्रोध चरम सीमा पर जा पहुंचता है।

आपको यदि क्रोध नहीं आता, आप कभी उत्तेजित नहीं होते, उत्तेजना के क्षणों में भी आप शान्त रहते हैं तो आप प्रणम्य हैं, वन्दनीय हैं। आपके चरणों में मेरे कोटि-कोटि प्रणाम।

× × ×

मेरा अपना हाल तो बहुत बुरा है।

दफ्तर से थका-मांदा लौटा हूं, भूख के मारे बुरा हाल है और देखूं कि पत्नी ने अभी चूल्हे में आग भी नहीं जलायी अथवा दाल-साग में जरूरत से ज्यादा नमक-मिर्च छोड़ दी है अथवा रोटी जला दी है, तो देखिये मेरे क्रोध का पारा।

उस दिन थाली न टूटे, सेवापरायणा पत्नी का गंदी-गालियों से समादर न हो, तो उसका भाग्य सराहना चाहिए।

× × ×

गरमी के दिन हैं। दफ्तर की छुट्टी है। दोपहर खाना खाकर मजे की झपकी ले रहा हूं। इसी समय घर का कोई बच्चा किसी चीज के लिए ठुनकने लगता है अथवा खेलते-खेलते कोई चीज गिरा देता है। मेरी नींद टूट जाती है। अब देखिये मेरा ताव? बच्चे के कान मैंने गरम न किये, उसकी पीठ लाल न की तो कहिये!

× × ×

जरूरी काम से पैदल जाना है। रास्ते में चप्पल बोल गयी। मेरे गुस्से का पार नहीं है। पास में कहीं मोची न मिले, अथवा मरम्मत के लिए जेब में पैसे न हों और श्रीमती चप्पल को हाथ में लटकाकर ले चलना पड़े तो मेरा क्रोध देखते ही बनता है!

× × ×

रिक्शा पंचर हो गया या 'क्यू' में दूर खड़े होने से टिकट मिलने में देर हो गयी और प्लेटफार्म पर पहुंचते-पहुंचते सीटी देकर ट्रेन चल पड़ी। मैं सचमुच रेल देखता रह गया। अब देखिये मेरा क्रोध!

× × ×

दिनभर का थका बिस्तर पर पड़ा हूं। आंखें नींद से भारी हैं। ऐसे समय नीचे से खटमल, ऊपर से मच्छर काटना शुरू कर देते हैं। अब देखिये मेरा ताव!

परंतु कितना ही भारी मत्कुण-यज्ञ करूं, कैसी भी अच्छी मसहरी लगाऊं, जान बचने वाली है? परंतु चौकी को धूप में डालकर उस पर गरम पानी छिड़ककर भी भला मेरा क्रोध शान्त होने वाला है?

× × ×

बच्चे रोते हैं, बीमार पड़ते हैं, रात में सोना हराम कर देते हैं। शरीर थकावट से चूर है, परंतु तापमान लेने के लिए जागना है, दवा वक्त पर देने के लिए जागना है। डॉक्टर का दरवाजा खटखटाना है। अब देखिये, मेरा पल-पल पर बढ़ने वाला क्रोध!

× × ×

मुझे दुर्बल पाकर कोई गाली दे देता है, पीट देता है। मेरा कसूर हो तब भी मुझे गुस्सा आता है, फिर बिना कसूर यदि कोई मार बैठे तो फिर मेरा क्रोधित होना स्वाभाविक ही है।

× × ×

मतलब, जब मेरे आराम में बाधा पड़ती है, सुखोपभोग में कोई अड़चन आ जाती है, तो मेरा क्रोध भड़क उठता है। फिर वह गरमी में उमस होने से हो, बाहर जाते समय ताली का गुच्छा खो जाने से हो, जरूरत के वक्त जरूरी चीज के न मिलने से हो, समय पर बर्तन मलने के लिए दाई के न आने से हो, खाना बनने के पहले ही आंच चली जाने से हो, किसी चीज के खो जाने से हो, बच्चों के जिद करने से हो, समय पर गाढ़ी मेहनत की कमाई न मिलने से हो, परीक्षा में असफल हो जाने से हो, बरसात में पैर फिसलकर गिर जाने से हो, बीमार पड़ जाने से हो, समय पर उधार गयी चीज या रकम वापस न मिलने से हो अथवा और ही किसी कारण से हो। मेरे स्वार्थ में, मेरे आराम में बाधा आयी नहीं कि मेरा क्रोध उबला!

× × ×

लेकिन, यहीं तक बस नहीं।

मेरे क्रोध के और भी कितने ही कारण हैं।

मुझ में कूट-कूटकर अनेक दुर्गुण भरे पड़े हैं। मगर मैं यह नहीं चाहता कि मेरी कमजोरियों का कोई पर्दाफाश करे! जब कोई व्यक्ति मेरे आत्मसम्मान को ठेस लगाता है, मेरी ख्याति पर प्रहार करता है, दूसरों की दृष्टि में मुझे गिराने की चेष्टा करता है, मुझे उचित से कम आदर देता है अथवा किसी भी प्रकार से मेरे अहंकार पर ठोकर मारता है तो मेरे ताव का ठिकाना नहीं रहता!

× × ×

मेरी पत्नी, मेरे छोटे भाई, बहन, मेरे बच्चे, मेरे अधीनस्थ कर्मचारी जब मेरी बात नहीं सुनते, मेरे आदेशों का अक्षरशः पालन नहीं करते अथवा मेरी रुचि और इच्छा के विपरीत कोई काम करते हैं, तो मेरा गुस्सा दर्शनीय बन बैठता है!

× × ×

मेरी झूठी शान में ठेस लगी नहीं, मेरी कमजोरियों पर किसी ने उंगली उठायी नहीं कि एड़ी से लेकर चोटी तक मेरा सारा शरीर क्रोध से जल उठता है।

× × ×

निन्दा और अपमान होने पर, उपेक्षा और तिरस्कार होने पर तो मेरा ही क्या, बड़े-बड़ों का आसन डोल जाता है। चिढ़ाने पर, तिरस्कृत होने पर मेरे क्रोध का पार नहीं रहता। मेरी शारीरिक अयोग्यता पर, मेरी जाति, वर्ण, कुल, विद्या, बुद्धि आदि पर कोई आक्षेप कर भर दे, मुझे चोट लग जाने पर, मेरे गिर जाने पर कोई हंस भर दे, मुसकरा भर दे, मेरा मखौल भर उड़ाये, तब देखिये मेरा लाल होना।

× × ×

कोई व्यक्ति जब मुझ पर व्यंग्य कसता है, मुझ पर कार्टून बनाता है, मित्रमण्डली में, परिचितों में, सभा-सोसाइटी में, क्लब या गोष्ठी में निरादर करता है, मजाक उड़ाता है, व्याज से भी कहीं मेरी निन्दा करता है तो मेरा रोम-रोम क्रोध से जलने लगता है!

× × ×

यह मत समझ लीजिये कि सिर्फ इतनी ही बातों पर मेरा क्रोध भड़कता है। मेरे क्रोध के कारणों की सूची बहुत लम्बी है। जैसे—

मेरा कोई साथी अथवा मेरे अधीन काम कर चुकने वाला कोई व्यक्ति जब धनसम्पत्ति में, मान-सम्मान में मुझसे बाजी मार ले जाता है, तो मेरा क्रोध फुफकार उठता है—हैं, मैं जहां-का-तहां पड़ा हूं और यह मुझसे इतना आगे बढ़ गया!...

× × ×

मुझे अनिद्रा का रोग है, नींद नहीं आती, चिन्ताएं आठ पहर चौंसठ बड़ी घेरे रहती हैं और कोई दूसरा मेरे सामने ही खर्राटे की नींद लेता है, निश्चिन्त जीवन व्यतीत करता है, मौज-मस्ती से जिन्दगी के दिन काटता है, यह देख मेरे क्रोध का पार नहीं रहता!

× × ×

मैं भले ही झूठ बोलता रहूं '**अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो**' की नीति अपनाता रहूं, पर मुझे यह बर्दाश्त नहीं होता कि कोई दूसरा व्यक्ति झूठ बोले अथवा असलियत पर पर्दा डाले!

× × ×

मैं दुनियाभर की खुराफातें करता रहूं, परंतु दूसरे से कोई सामान्य-सा भी अपराध बन पड़े, तो मैं उसे क्षमा करने की बात भी नहीं सोच सकता! ऐसे मौकों पर मेरा क्रोध देखते ही बनता है!

× × ×

'**धोबी से बस न चला तो गदहे के कान उमेठ दिये!**'—इस तथ्य को मैंने जी-जान से पकड़ रखा है। दफ्तर में बड़े बाबू जिस दिन मुझ पर अपना ताव उतारते हैं, उस दिन मेरी पत्नी और बच्चे उस ताव के शिकार न बने तो मैं ही क्या!

× × ×

अपनी बेवकूफियां मेरी दृष्टि में नगण्य रहती हैं, पर दूसरों की बेवकूफियों पर मेरा बिगड़ उठना मेरे लिए स्वाभाविक है।

भले ही मेरा दृष्टिकोण गलत हो, पर वाद-विवाद में कोई मेरे पक्ष को चुनौती दे, फिर देखिये मेरा क्रोध!

× × ×

बच्चे पढ़ाई में यदि मेरी आशा के अनुरूप प्रगति न करें अथवा व्यवहार में ठीक वैसा न करें, जैसा बुजुर्गों को करना चाहिए, फिर देखिये मेरा ताव। मार-मारकर उन्हें उत्तू बनाये बिना मैं मान नहीं सकता!

× × ×

'टाकाय टाका बाढ़े!' किसी को क्रोधित होते देख मैं भी क्रुद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। पत्थर का जवाब पत्थर से देने में मैं माहिर हूं। ईसा का वह पर्वत वाला उपदेश मुझे फूटी आंख नहीं सुहाता कि 'कोई तुम्हारे दायें गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम उसके आगे बायां गाल भी कर दो!'

× × ×

अमुक व्यक्ति तुम्हारे खिलाफ ऐसा-ऐसा कह रहा था—यह बात कोई मुझ से आकर कह दे, बस, असलियत का कुछ भी पता लगाये बिना मैं क्रोध के हाथ का खिलौना बन बैठता हूं। बात का बतंगड़ बनते देर नहीं लगती।

× × ×

भले ही न्याय और सदाचार से मैं कोसों दूर रहूं, पर मेरे सामने कोई अन्याय और दुराचार कर तो जाये! अपराधी को दण्ड देने के लिए मैं तत्काल कानून को अपने हाथ में उठा लेता हूं!

× × ×

तात्पर्य यह कि सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक एक-दो नहीं, कभी-कभी सैकड़ों ऐसे प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं, जब मैं उत्तेजित हो उठता हूं, मेरी शान्ति मेरा पल्ला छुड़ाकर भाग जाती है और मैं क्रोध के हाथों की कठपुतली बन बैठता हूं। जहां मेरे स्वार्थ में कोई बाधा पड़ी, जहां मेरी इच्छा के प्रतिकूल कुछ हुआ, मेरे आराम में खलल पड़ा, जहां कोई काम बिगड़ा, जहां कोई चीज खराब हुई, जहां किसी ने मारा-पीटा, गाली बकी, व्यंग्य किया, निन्दा की, मेरे खिलाफ कुछ कहा, कुछ किया—बस क्रोध देवता हाजिर।

× × ×

'**कामात्क्रोधोऽभिजायते।**'

काम से तो क्रोध आता ही है। लोभ से भी क्रोध आता है। मोह से भी क्रोध भड़कता है।

मद और मात्सर्य से भी क्रोध का जन्म होता है। कहा नहीं जा सकता कि हमारे अन्तस का कौन विकार कब क्रोध का रूप धारण कर लेगा।

× × ×

उत्तेजना के ये क्षण रात-दिन में न जाने कितनी बार उपस्थित होते हैं। रोज हम कितने ही लोगों के सम्पर्क में आते हैं। सबके स्वार्थ अलग, सबके स्वभाव अलग,

सबकी प्रकृति अलग, सबकी रुचि अलग, सबके रुझान अलग। हाथ की पांच अंगुलियां जब एक-सी नहीं, तब दूसरे लोगों की तो बात ही क्या? एक पेट के जाये चार बेटे चार तरह के होते हैं। फिर यह आशा ही कैसे की जा सकती है कि सारी दुनिया मेरी ही रुचि के अनुसार घूमेगी?

और जहां किसी ने कोई बात मेरी रुचि के प्रतिकूल की कि मुझे क्रोध आया। मेरी इच्छा के विपरीत कुछ हुआ कि मैं उत्तेजित हुआ!

× × ×

क्रोध जब आता है तो मेरा चेहरा लाल हो जाता है, भौंहें तन जाती हैं, आंखें लाल हो उठती हैं, नथुने फूल जाते हैं, नाक लाल हो जाती है, सांस तेजी से चलने लगती है, जुबान बेलगाम हो जाती है, मुट्ठियां बंध जाती हैं, शरीर का रोम-रोम उत्तेजना से भर उठता है।

क्रोध के आते ही मेरी शान्ति हवा हो जाती है, विवेक झख मारा करता है, बुद्धि का दिवाला खिसक जाता है, तन-बदन का सारा होश जाता रहता है और उस हालत में मैं कुछ भी कर सकता हूं।

क्रोध के आवेश में मैं गाली बक सकता हूं, व्यंग्य कस सकता हूं। स्त्री-बच्चों पर ही नहीं, दूसरों पर भी हाथ उठा सकता हूं, कोई भी कुकृत्य कर सकता हूं, भले ही बाद में उसके लिए पछताना पड़े।

उत्तेजना के क्षणों में मैं मार-पीट, खून-कत्ल तक कर सकता हूं। और क्या नहीं कर सकता?

× × ×

क्रोध का परिणाम किसी से छिपा नहीं। जेलों की आबादी आधी भी नहीं रहती, यदि मानव क्रोध पर विजय प्राप्त कर पाता। वहां काम, क्रोध और लोभ के ही शिकार तो चारों ओर दिखायी पड़ते हैं।

लखनऊ सेण्ट्रल जेल में 42 में एक सीधे-सादे कैदी से जब मैंने पूछा—'भाई! तुम क्यों यहां चले आये? तुम तो बहुत सीधे, ईमानदार और शान्त जान पड़ते हो।' तो वह बहुत शर्माकर बोला—'क्या बताऊं भाई जी! ससुराल में जोरू की विदा कराने गया था। उन लोगों ने उस समय उसे भेजने से इनकार किया। मुझे गुस्सा आ गया और मैंने गंड़ासा उठाकर बीबी की ही गर्दन उड़ा दी। अब जिन्दगीभर जेल काटनी है।'

× × ×

क्रोध अत्यन्त भयंकर मानसिक विकार है। आज घर-घर में इतना लड़ाई-झगड़ा, द्वेष, घृणा और झिकझिक दीख पड़ती है, उसका मूल कारण यह क्रोध ही है।

क्रोध प्रकट होता है तो कटु वाणी में, तू-तू मैं-मैं, गाली-गलौज, मार-पीट और कत्ल में। दबा रहता है तो घृणा और द्वेष का रूप पकड़ लेता है और मौका मिलते ही ज्वालामुखी की तरह फट पड़ता है।

बीमारियां तो क्रोध से न जाने कितनी पैदा होती हैं। चिन्ता, स्नायुदौर्बल्य, रक्तचाप, मिरगी, बेहोशी, पागलपन आदि न जाने क्या-क्या हो जाता है क्रोध के कारण। कहते हैं, क्रोध से विषाक्त माता का दूध पीने से बच्चे की मृत्यु तक होनी सम्भव है।

× × ×

व्यक्ति का क्रोध समाज में फैलता है, समाज का राष्ट्र में और राष्ट्र का सारे संसार में। विश्वयुद्धों का जनक क्रोध ही है। एटम बम, हाइड्रोजन बम आदि के भीतर हमारा यह क्रोध ही तो सिमटा-सिकुड़ा बैठा है। इसके फटने की देर है कि मीलों तक सर्वनाश का ताण्डव होने लगता है।

× × ×

जो क्रोध इतना भयंकर है, जो क्रोध आनन-फानन में लाख का घर खाक कर देता है, जो क्रोध जेल, कालापानी और फांसी तक पड़ने के लिए विवश कर देता है, जिस क्रोध की परिणति दुःख और हाहाकार में ही होती है, उसी क्रोध के विषय में मैंने लोगों को कहते सुना है—'क्रोध के बिना भी भला संसार का काम चल सकता है?' वे कहते हैं—

अति सीधे मति होइये, कछुक व्यंग मन माहिं।
सीधी लकड़ी काटि लें, टेढ़ी काटैं नाहिं॥

स्वामी रामतीर्थ ने इसका बड़ा सटीक उत्तर दिया है—'हम यह पूछते हैं कि क्या यह सच है कि 'टेढ़ी काटैं नाहिं?' सच तो यह है कि समय पर सब कट

जाती हैं। क्या सीधी और क्या टेढ़ी। केवल आगे-पीछे का भेद है। कटने में सब बराबर हैं।'

'हां, अगर सचमुच अन्तर है तो यह है कि टेढ़ी लकड़ी काटी जाकर प्रायः जलायी जाती है, ईंधन के काम आती है और सीधी लकड़ी काटी जाकर जलायी नहीं जाती, वरं वह रंग-रोगन से सजकर अमीरों, वृद्धों, महापुरुषों, शौकीनों, सुन्दरियों के कर-कमलों का दण्ड (डंडा) बनती है या यदि मोटी और भारी हो तो मन्दिरों, मकानों में शहतीर का काम देती है, स्तम्भ का पद पाती है।'

'सीधी लकड़ी हर प्रकार से अपनी पहली अवस्था की अपेक्षा उन्नति पाती और विकास-समन्वित होती है, जबकि टेढ़ी को अवनति और विनाश प्राप्त होता है।'

× × ×

अनुशासन के लिए कुछ लोग क्रोध को आवश्यक मानते हैं। उनका मत है कि क्रोध के बिना नौकर ढीठ हो जायेंगे। दफ्तरों का काम ठीक से न चलेगा। लड़के बड़ों का आदर न करेंगे। उनका कहना है कि क्रोध न किया जाये, पर इसका स्वांग तो करना ही चाहिए। कारण—

सीधी उंगली घी जम्यो क्यों हूं निकसे नाहिं।

× × ×

परंतु मैं जानता और मानता हूं कि क्रोध का स्वांग भी खतरे से खाली नहीं। एक बार 'अभिमन्यु वध' का नाटक खेला जा रहा था। बेटा अभिमन्यु बना था, पिता को उस पर गदा का प्रहार करना था। परंतु क्रोध के आवेश में पिता भूल बैठा कि उसे स्वांग ही करना है। गदा-प्रहार से 'अभिमन्यु' की खोपड़ी दरअसल खुल गयी। स्वांग असलियत बन बैठा। खून के फव्वारों से सारा स्टेज रंग गया।

× × ×

नौकरों, छात्रों और बालकों, घर-दफ्तरों में अनुशासन लाने के लिए न क्रोध की जरूरत है, न क्रोध के स्वांग की। दूसरों में अनुशासन लाना है तो पहले अपने आपको अनुशासित करिये। आपको देखकर ही दूसरे लोग अनुशासन का पालन करने लगेंगे।

Example is better than precept.

(कल्याण, अगस्त 2022 अंक से साभार)

सुभाषित

संकलन—साध्वी सुबुद्धि

जिसने गुरुभक्ति का आभूषण पहना है उससे सुंदर संसार में कोई नहीं है।

मौत को लोग यूं ही बदनाम करते हैं, तकलीफ तो जिंदगी से है। जिंदगी है न जनाब, तकलीफ तो होगी ही, मरने के बाद तो जलने का भी एहसास नहीं होता।

खुश इंसान वह नहीं है जिसकी जिंदगी में तकलीफ नहीं है। खुश वह है जो तटस्थ रहना सीख गया है।

कोई भी इंसान परिपूर्ण नहीं है। इसलिए किसी भी इंसान में परिपूर्णता की खोज नहीं करना है। सबमें अच्छा है, सबमें बुरा है। कोई भी इंसान अच्छा-अच्छा नहीं है। कोई भी इंसान बुरा-बुरा नहीं है।

किसी ने अच्छा जाना मुझे, किसी ने बुरा जाना। जो जैसा था उसने मुझे वैसा जाना।

समन्दर में फना होना तो किस्मत की निशानी है, दुख तो उन पर होता है जो किनारों पर डूब जाते हैं।

मंजिल मिलेगी भटककर ही सही, गुमराह तो वे हैं जो घर से निकले ही नहीं।

ऊंचाई पर जाना मुश्किल नहीं, ऊंचाई पर टिके रहना बड़ी बात है।

अगर आपको यकीन है कि आप सही हैं तो आपको चिंता करने की जरूरत नहीं है कि आपके बारे में दुनिया क्या सोचती है।

मोह के बिना दुख होता ही नहीं, जब भी दुख होता है, मोह से होता है।

उत्तमता गुणों से आती है, ऊंचे आसन पर बैठ जाने से नहीं। महल के शिखर पर बैठ जाने से कौआ क्या गरुड़ हो जाता है।

अपकीर्ति के समान कोई मृत्यु नहीं है, क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है, निंदा के समान कोई पाप नहीं

है, मोह के समान कोई नशा नहीं है। काम के समान कोई आग नहीं है। राग के समान कोई बंधन नहीं है और आसक्ति के समान कोई विष नहीं है।

समाज कभी अप्रियता के आधार पर नहीं जुड़ता। संबंध कभी अप्रियता के आधार पर नहीं बनते। सारे के सारे संबंध जुड़ते हैं, प्रेम के धागे के आधार पर, आत्मीयता के आधार पर।

प्यार एक मूर्ख करता है, क्योंकि उसमें वासना होती है; प्रीति एक नारी करती है, क्योंकि उसमें कामना होती है; प्रेम एक संत करता है, क्योंकि उसमें साधना होती है।

जैसे दीपक की शिखा क्षण-क्षण बदलती है वैसे मनुष्यों का मन क्षण-क्षण बदलता है। ऐसे मनुष्यों से सुख की आशा कर उनके मोह में बंध जाना कितनी बेवकूफी है।

सपने से जागकर जैसे व्यक्ति को स्वप्न के प्राणी-पदार्थों के प्रति राग नहीं होता वैसे विवेकवान को जागृति के इन सारे प्राणी-पदार्थों के प्रति राग नहीं होता।

प्रसन्नता ऐसा थर्मामीटर है जो शरीर की स्वस्थता, बुद्धि की स्थिरता और आत्मा की संतुष्टि को नापता है।

प्रशंसा एक अद्‌भुत चीज़ है, यह बताती है कि जो अच्छाई दूसरों में है वही हमारे भीतर भी है।

हंसी एक महान उपचार और लोगों को जोड़ने वाली ताकत है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण चीज़ है जो हमें मानव योनि में प्राप्त हुई है और शांत मन ही चीज़ों के खुशनुमा पहलुओं को देख पाता है।

अध्यात्म की साधना करने वाले का चेहरा प्रसन्न रहता है। जिसके चेहरे पर उदासी, चिंता या शोक रहता है, वह धर्म की आराधना नहीं कर रहा है।

संसारी जीवन और आध्यात्मिक जीवन की सरलतम परिभाषा यह की जा सकती है कि द्वन्द्वों का जीवन संसार का जीवन है और द्वन्द्वमुक्त जीवन अध्यात्म का जीवन है।

सुख आकाश से नहीं टपकता। किसी दिशा से एकाएक प्रकट नहीं होता। धरती के नीचे से फूटकर भी नहीं निकलता। यह तो अपने भीतर से उपजता है।

मन में आनंद है तो सर्वत्र आनंद है। मन चंगा तो कठौती में गंगा। मन विश्वजित है आप भी विश्वजयी हैं। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

आप अपनी बुद्धि के लिए जो भी नया सीखें, उसे अमल में लाने की वचनबद्धता बहुत महत्त्व रखती है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि यह आपकी याददाश्त, कागज और तकनीक से जुड़ी ऐसी जानकारी बनकर रह जाये, जो कभी उपयोग में ही न लाई जा सके।

जिंदगी एक प्रतिध्वनि है। सब कुछ लौटकर वापस आ जाता है—अच्छा, बुरा, सच, झूठ। इसलिए दुनिया को सबसे अच्छा देने का प्रयास करें, तब निश्चित ही हमारे पास अच्छा वापस आयेगा।

बुद्ध ने कहा था कि क्रोध, किसी दूसरे पर फेंकने के इरादे से उठाये गये गरम कोयले के समान है, इससे जलने वाला व्यक्ति हम खुद हैं।

यदि किसी कार्य को सुधार सकते हैं तो उसे सुधार दें और यदि इस विषय में कुछ नहीं कर सकते तो चिंता करने की जरूरत नहीं है।

लोगों से मिलना-जुलना जहां बहुत अधिक रचनात्मक तथा प्रेरक हो सकता है वहीं यह अत्यंत तनावपूर्ण, उबाऊ और समय की बर्बादी जैसा महसूस हो सकता है। जीवन भर अपने मन को शांत और केंद्रित बनाये रखना एक बहुत बड़ी चुनौती है।

हमारे लिए यह जानना बहुत उपयोगी है कि जो गलती हम दूसरे लोगों में देखते हैं वही गलती अक्सर हमारे अंदर भी होती है। इसलिए यदि हम उस गलती के लिए दूसरों की आलोचना करते हैं तो हम चिंतन-ध्यान के माध्यम से स्वयं अपनी जांच कर सकते हैं।

चीजों का ढेर न लगने दें, न अपने आसपास और न ही अपने दिमाग में।

दुनिया में नकारात्मकता का सबसे बड़ा स्रोत है, दूसरों के बारे में बुरा सोचना या बुरा कहना। ❑

व्यवहार वीथी

गुणदृष्टि अपनाइये

एक परिवार में छोटी-छोटी बातों को लेकर पति-पत्नी में आये दिन झगड़ा हुआ करता था। उनके झगड़े से परिवार के सभी सदस्य परेशान रहते थे। छोटे बच्चों पर उनके झगड़े का बुरा प्रभाव पड़ रहा था। परिवार के सभी सदस्यों ने तथा अन्य रिश्तेदारों ने उन्हें समझाने का प्रयास किया किन्तु उनका झगड़ा शांत होने की बजाय बढ़ता ही गया और दोनों में तलाक की स्थिति आ गयी। तब परिवार के सदस्यों ने उन दोनों पति-पत्नी को समाधान के लिए एक संत के पास भेजा। संत ने दोनों को जब झगड़े का कारण पूछा तब दोनों एक दूसरे की गलतियां बताकर संत के सामने ही झगड़ने लगे और एक दूसरे की गलतियां गिनाने लगे।

संत चुपचाप उन दोनों के झगड़े को देखते-सुनते रहे। जब लगभग आधा घंटा झगड़ने के बाद दोनों शांत हुए तब संत ने कहा—अभी तक तुम दोनों एक-दूसरे की गलतियों एवं बुराइयों को बताकर झगड़ते रहे हो, किन्तु अब एक दूसरे की अच्छाइयों को बताओ। संत की बात सुनकर दोनों नफरत से एक दूसरे को देखते रहे। कोई किसी की अच्छाई बताने को तैयार ही नहीं हुआ तब संत ने दोनों को कागज-कलम देते हुए कहा—यह तो हो नहीं सकता कि तुम दोनों में कोई अच्छाई ही न हो और दोनों एक दूसरे की अच्छाई को जानते ही न हो। यदि तुम नफरत और गुस्से के कारण सामने एक दूसरे की अच्छाई नहीं कह सकते तो इस कागज पर एक दूसरे की अच्छाइयां लिख तो सकते हो।

संत से कागज-कलम लेकर पहले तो दोनों चुपचाप बैठे रहे, फिर धीरे से दोनों एक दूसरे की अच्छाइयां लिखना शुरू किये। लिखने के पश्चात दोनों ने अपना-अपना कागज जब संत को दिया तब संत ने कागज दोनों को लौटाते हुए कहा कि अब दोनों एक दूसरे के द्वारा लिखी गयी अपनी-अपनी अच्छाइयों को पढ़ो। जब दोनों अपनी-अपनी अच्छाइयों को पढ़ने लगे तब थोड़ी देर बाद दोनों की आंखों से अश्रु की धारा बहने लगी और दोनों पति-पत्नी हाथ जोड़कर एक दूसरे से माफी मांगने लगे और कहने लगे कि मैं तुम्हारी अच्छाइयों को न देखकर केवल बुराइयों को देख-देख कर तुमसे नफरत करता रहा और झगड़ता रहा। दोनों ने संत को प्रणाम करते हुए कहा—भगवन्! आपने हमें घृणा, नफरत एवं कलह से बचाकर जीवन जीने की एक नई दृष्टि देकर हमारे परिवार को बिखरने एवं टूटने से बचा लिया। हम आपके जीवनपर्यंत आभारी रहेंगे और समय-समय पर मागदर्शन प्राप्त करने के लिए आपके पास आते रहेंगे।

किसी भी परिवार में पिता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू, देवरान-जेठान, भाई-भाई आदि के बीच परस्पर विवाद, कलह एवं लड़ाई-झगड़े के अनेक कारकों में एक प्रमुख कारक है हर समय एक-दूसरे की बुराइयों, गलतियों को देखते रहना और हर बात-व्यवहार-काम में कमियां-त्रुटियां निकालते रहना। जिस घर-परिवार में लोग एक-दूसरे की बुराइयां, कमियां एवं त्रुटियां खोजने में लगे रहते हैं वहां के लोग स्वयं अपने मन को एवं पारिवारिक स्थिति को किस प्रकार नरक से भी ज्यादा बदतर बनाये रखते हैं, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

कुछ अपवाद को छोड़कर हर व्यक्ति में बुराई की अपेक्षा अच्छाई और दोष की अपेक्षा गुण ज्यादा होते हैं और सभी लोग इसे जानते भी हैं, परन्तु उनका अहंकार इसे उन्हें स्वीकारने नहीं देता। यदि लोग एक दूसरे की बुराइयों एवं दोषों पर ध्यान न देकर उनकी अच्छाइयों एवं गुणों पर ही ध्यान देने लग जायें तो परिवार में कलह, विवाद एवं झगड़ों से स्वाभाविक बचा जा सकता है। जब कोई भी व्यक्ति किसी की त्रुटियों, गलतियों एवं कमियों को देखता रहता है तब अपने आप उसका मन उसके प्रति नफरत, घृणा, द्वेष एवं गुस्सा से भरता चला जाता है, और जब मन में किसी के प्रति सिर्फ गुस्सा, नफरत, घृणा एवं द्वेष ही रह जाते हैं तब फिर उसकी

अच्छाइयां एवं सद्गुण दिखाई नहीं पड़ते। ऐसी स्थिति में सिवा लड़ाई-झगड़े के और क्या रह सकता है। इसके विपरीत जब किसी के सद्गुणों एवं अच्छाइयों पर ही ध्यान दिया जाता है तब उसके प्रति मन में केवल प्रेम एवं सद्भाव ही रह जाते हैं और जिसके लिए मन में प्रेम एवं सद्भाव होते हैं उसमें त्रुटियां, कमियां एवं दोष दिखाई नहीं पड़ते। और जहां मन में प्रेम एवं सद्भाव है वहां कहां लड़ाई-झगड़ा, कलह एवं विवाद।

यह हर मनुष्य की मनःस्थिति होती है कि जिसके लिए उसके मन में प्रेम होता है उसे उसके दोष-कमी न दिखाई देकर केवल अच्छाई एवं गुण ही दिखाई पड़ते हैं और मनुष्य जिसके गुणों एवं अच्छाइयों को ही देखता और याद करता रहता है स्वाभाविक ही उसके प्रति उसका प्रेम बढ़ता चला जाता है। पति-पत्नी, सास-बहू या कोई अन्य निकट संबंधियों में जब कोई एक अपने साथी की त्रुटियों, कमियों एवं दुर्व्यवहार को नजरअंदाज कर उसके साथ प्रेम एवं सद्भावनापूर्ण सुंदर व्यवहार करता है, परंतु दूसरा व्यक्ति सामने वाले व्यक्ति की छोटी-छोटी गलतियों एवं त्रुटियों को लेकर उसकी निंदा-आलोचना करने के साथ-साथ उसके साथ दुर्व्यवहार करता रहता है, तब स्थिति विषम बन जाती है। ऐसी स्थिति में यदि पहला व्यक्ति धैर्य और सहनशीलता रखकर दूसरे व्यक्ति की निंदा-आलोचना एवं दुर्व्यवहार की परवाह न कर उसकी अच्छाइयों को सामने रखकर उसके साथ प्रेमपूर्वक सद्व्यवहार ही करता रहे तो दूसरे व्यक्ति पर धीरे-धीरे अच्छा प्रभाव पड़ता जायेगा और वह भी अपने स्वभाव-व्यवहार एवं कर्म को सुधारने लगेगा।

रिश्ता चाहे कुछ भी हो जहां दो व्यक्तियों का पारस्परिक स्थायी संबंध-व्यवहार हैं दोनों के स्वभाव, संस्कार एवं विचार में कुछ न कुछ अंतर और विरोध तो रहेगा ही और इस अंतर एवं विरोध को घटाया तो जा सकता है सर्वथा मिटाया नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में दोनों में से किसी एक को सहनशील बनना ही पड़ेगा तभी विवाद, कलह एवं लड़ाई-झगड़े से बचकर व्यवहार को मधुर एवं सुंदर बनाये रखा जा सकता है। परिस्थिति विषम तभी बनती है जब दोनों में से कोई भी झुकने एवं सहने को तैयार नहीं होता।

जो यह कहता है कि मैं किसी का कुछ सह नहीं सकता, उसे पदे-पदे सहना पड़ता है। यद्यपि उसे कोई सहाता नहीं है फिर भी उसे उसका अहंकार हर समय यही अनुभव कराता रहता है कि अमुक-अमुक ने तुम्हारी बात नहीं मानी, अमुक ने तुम्हारी अवज्ञा की, अमुक ने तुम्हारा अपमान एवं विरोध किया, इत्यादि। इन सब काल्पनिक बातों को लेकर वह अंदर-अंदर जलता रहता है और अशांत, उद्विग्न एवं पीड़ित होता रहता है।

प्रायः अधिकतम लोगों की यही इच्छा रहती है कि घर-परिवार के सभी सदस्य, यहां तक पूरी दुनिया के लोग, मेरी नाक की सिधाई में ही रहें और चलें, परन्तु यह संभव कहां है! जिन लोगों के साथ रह रहे हैं उनके स्वभाव, संस्कार, विचार एवं व्यवहार को प्रतिकूल मानकर उनके संग-साथ रहना छोड़ दिया जाये तो आगे जिनके संग-साथ रहना होगा उनके स्वभाव, संस्कार, विचार एवं व्यवहार में भी तो अंतर रहेगा, वहां भी तो सहना पड़ेगा, तब फिर जिनके साथ अभी रहना हो रहा है, उनको ही सहन कर लेने में क्या आपत्ति है, जो उनसे रात-दिन कलह-विवाद-झगड़ा कर रहे हैं।

एक परिवार में पति-पत्नी में प्रायः विवाद एवं झगड़ा हुआ करता था, जबकि दोनों खूब पढ़े-लिखे एवं उच्च पदाधिकारी थे। एक दिन पति महोदय एक संत से मिलने गये तब बातचीत के दौरान उन्होंने संत को बताया कि महाराज! आज मेरी पत्नी ने मुझे चप्पल से मारा है। संत ने उन्हें समझाया फिर कुछ देर बैठकर वे चले गये। कुछ दिन के बाद दोनों पति-पत्नी एक साथ संत से मिलने आये। कुछ चर्चा के पश्चात संत ने उनकी पत्नी से पूछा—कहो, इनके साथ तुम्हारा कैसे निभता है? उसने कहा—महाराज! क्या बताऊं कैसे निभता है! इनको छोड़कर यदि दूसरे के साथ रहने लगूं तो वहां भी कुछ न कुछ सहना ही पड़ेगा। जब वहां भी सहना ही है तो इनको ही सह रही हूं। बिना कुछ सहन किये न तो किसी के साथ रहा जा सकता है और न कहीं रहा जा सकता है।

वस्तुतः जब कोई भी मनुष्य, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अपने को दूसरों से ज्यादा योग्य, समझदार और बुद्धिमान मान लेता है तब उसे दूसरों में त्रुटियां, बुराइयां एवं दोष ही दिखाई पड़ते हैं, उसे दूसरों की अच्छाइयां दिखाई ही नहीं पड़तीं या उसका अहंकार उसे दूसरों की अच्छाइयों एवं गुणों को देखने ही नहीं देता। सारी अच्छाइयां उसे अपने ही में दिखाई पड़ती हैं। झगड़ा एवं विवाद का कारण यही है। यदि आदमी यह सोच और स्वीकार कर ले कि जैसे मुझमें अच्छाइयां एवं गुण हैं वैसे ही दूसरों में भी अच्छाइयां एवं गुण हो सकते हैं और हैं तथा जैसे दूसरों में कमियां एवं दोष हैं वैसे ही मुझमें भी कमियां एवं दोष हो सकते हैं और हैं तो उसका सारा अहंकार गल जायेगा, फिर वह व्यर्थ विवाद एवं झगड़ा करेगा ही नहीं।

यह नियम है कि आदमी के मन में जिसके लिए प्रेम होता है उसे उसके गुण एवं अच्छाइयां ही दिखाई पड़ते हैं और जिसके गुण एवं अच्छाइयां दिखाई पड़ते हैं उसके लिए अपने आप प्रेम बढ़ता चला जाता है। जहां प्रेम है और दोष, भूल, गलती न देखकर गुण ही देखा जा रहा है वहां झगड़ा, कलह एवं विवाद की गुंजाइश कहां! इस संदर्भ में यह प्रसिद्ध कहानी अत्यंत प्रासंगिक है—

एक युवक-युवती की शादी होने पर जब दोनों पहली रात को इकट्ठे हुए तब दोनों ने यह निर्णय लिया कि दोनों अपने पास एक-एक डायरी रखेंगे और उसमें प्रतिदिन सामने वाले की गलतियां लिखते जायेंगे। शादी की पहली सालगिरह के दिन डायरी की अदला-बदली करके अपनी-अपनी गलतियों को समझेंगे कि मैंने साल भर के दौरान क्या-क्या गलतियां कीं। साल बीतने के पश्चात शादी की सालगिरह का उत्सव मनाने के पश्चात जब दोनों एकान्त कमरे में मिले तब डायरी की अदला-बदली कर देखने लगे। पत्नी ने अपनी डायरी के प्रत्येक पन्ने पर अपने पति की अनेक गलतियां लिखी थी कि आज तुमने ये गलतियां की। उधर पत्नी पति से डायरी लेकर देखने लगी कि पति ने मेरी क्या-क्या गलतियां लिखी है। वह देखती है कि डायरी के सभी पन्ने कोरे के कोरे ही हैं, किसी पन्ने में कुछ लिखा ही नहीं है। अंतिम पन्ने में पति ने लिखा था कि प्रिये! मेरी छोटी-बड़ी अनेक भूलों एवं गलतियों को सहनकर तुमने मुझे अपना जो प्रेम और सहयोग दिया है उसके लिए मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूं। रही बात तुम्हारी गलतियों की, तो मेरे मन में तुम्हारे लिए इतना प्रेम है कि मुझे तुम्हारी कोई गलती दिखाई ही नहीं पड़ी, फिर मैं तुम्हारी क्या गलती लिखूं।

जब गलती दिखाई ही नहीं पड़ती तब झगड़ा कहां और किसलिए होगा! ऐसा नहीं है कि आदमी में गलतियां होती ही नहीं हैं। हर आदमी में कुछ न कुछ कमियां एवं गलतियां होती हैं या रह जाती हैं, परन्तु हर आदमी में बहुत कुछ अच्छाइयां भी होती हैं। अब यह सामने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह कमियों, गलतियों, त्रुटियों को देख-देखकर या याद कर जीवन पर्यंत कुढ़ता, खीजता और झगड़ता रहे या अच्छाइयों एवं गुणों को देखकर दूसरों के साथ प्रेम एवं सद् भावपूर्ण व्यवहार कर स्वयं सुख से जीये और दूसरों को भी सुखपूर्वक जीने दे।

जब घर-परिवार के कुछ सदस्य किन्हीं बातों को लेकर परस्पर झगड़ते रहते हैं तब वे अपने मन की सुख-शांति को तो नष्ट ही कर देते हैं पूरे परिवार का माहौल भी बिगड़ जाता है, इससे छोटे बच्चों के संस्कार-स्वभाव भी बिगड़ने लगता है और उनका जीवन बहुत दुखद बन जाता है। अपनी शांति के लिए, घर-परिवार की शांति के लिए, छोटे बच्चों की उचित देखरेख एवं संस्कार निर्माण के लिए आवश्यक है कि घर-परिवार के सदस्यों की छोटी-छोटी गलतियों-कमियों एवं छोटे-छोटे दोषों को तूल न देकर उनके गुणों एवं अच्छाइयों पर ही दृष्टि रखा जाये, जिससे घर-परिवार का वातावरण सुखद बना रहे। हमेशा यह ध्यान रखें—जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। दूसरों से अपने लिए जो व्यवहार चाहते हैं वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ करना शुरू कर दें, फिर कभी और कहीं शिकायत, कलह, विवाद एवं झगड़े की स्थिति नहीं आयेगी। सबका मन प्रसन्नता एवं प्रेम से भरा रहेगा।

—धर्मेन्द्र दास

सद्गुरु कबीर की सहज साधना

लेखक—विवेकदास

सद्गुरु कबीर एक महान समाज सुधारक होने के साथ-साथ उच्च आध्यात्मिक साधक थे। उन्होंने जीवन को बड़ी गहराई से देखा और जाना था। किस प्रकार मनुष्य मानसिक विकारों से आबद्ध होकर दुखमय जीवन जीने को मजबूर होता है, किस प्रकार मानसिक असंतुलन की वजह से बाह्य सम्पन्नता के बावजूद दीन-हीन और लाचार बन जाता है और जीवन भर मनस्ताप में जलता रहता है, संतापित और पीड़ित होता रहता है, यह बात सद्गुरु कबीर से छिपी नहीं थी। उनकी नजर में प्रायः सभी दुखी ही दिखते थे, इसीलिए वे कह उठते हैं कि—

तन धरि सुखिया काहु न देखा, जो देखा सो दुखिया।
उदय अस्त की बात कहत हैं, सबका किया विवेका॥
बाटे बाटे सब कोई दुखिया, क्या गिरही बैरागी।
शुकाचार्य दुख ही के कारण, गर्भहि माया त्यागी॥
योगी जंगम ते अति दुखिया, तापस के दुख दूना।
आशा तृष्णा सब घट ब्यापी, कोइ महल नहिं सूना॥
साँच कहौं तो सब जग खीजे, झूठ कहा न जाई।
कहहिं कबीर तेई भौ दुखिया, जिन्ह यह राह चलाई॥

अपनी-अपनी जगह सभी दुखी हैं। तन धारण करके इस संसार में कोई भी पूर्णतः सुखी नहीं है। कोई तन से दुखी है, तो कोई मन से दुखी है। इन दो दुखों के बीच जीव अनादि काल से पिसता रहा है और आज भी पिस रहा है। इन दुखों से बचने के लिए मनुष्य भूलवश भौतिक समृद्धि की ओर बढ़ता है। धन, परिवार, पद, वैभव से सम्पन्न होना चाहता है, पर वहां भी दुखों का अंत नहीं पाता। तब आध्यात्मिक खोज शुरू करता है, परन्तु यह सभी लोग नहीं कर पाते। कोई-कोई सुज्ञ जीव ही इस क्षेत्र में आगे बढ़ पाते हैं और उनमें से कुछेक ही अपने लक्ष्य तक पहुंच पाते हैं, दुखमुक्त हो पाते हैं।

अधिकम लोग तो धर्म के नाम पर तीर्थ, व्रत, उपवास, पूजा, हवन, तर्पण, जप, कथा-कीर्तन, नाच-गान में ही भूल जाते हैं। इनसे कुछ मानसिक तसल्ली मिलती है तो वहीं रुक जाते हैं। कुछ लोग घोर शारीरिक तपस्या, योग साधना करते हैं, जो सामान्य जन मानस के लिए संभव ही नहीं है। पर वे भी कठोर साधना करके शांत मन के स्वामी कहां बन पाते हैं, बल्कि अहंकार और क्रोध के ही वशीभूत रहते हैं। गुरु कबीर अपने समय में सब तरह के लोगों के बीच गये, उनको देखा-समझा और धर्म के नाम पर चल रहे कर्मकाण्ड एवं पाखंड की निरर्थकता का पर्दाफाश किया। घोर शारीरिक साधना की निरर्थकता को भी समझा और समाज के बीच उसकी सच्चाई बयां की।

जैसे महात्मा बुद्ध कुछ वर्षों तक कठोर साधना करते-करते कृशकाय हो गये, फिर भी वह शांति, वह दुखमुक्त अवस्था नहीं प्राप्त कर सके, जिसके लिए उन्होंने साधना आरम्भ की थी। तो फिर उन्होंने मध्यम मार्ग द्वारा साधना करके परमशांति या बुद्धत्व को प्राप्त किया। फिर उसी मध्यम मार्ग का उपदेश जन सामान्य को दिये। ठीक ऐसे ही सद्गुरु कबीर ने भी हठयोग आदि साधना करने के बाद उसकी निरर्थकता को समझकर सहज साधना पर बल दिया, जिसे उन्होंने सहज ध्यान या सहज समाधि का नाम दिया। उनका जगत प्रसिद्ध पद है—

संतो सहज समाधि भली।
गुरु परताप भयो जा दिन ते, सुरत न अन्त चली॥
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो पूजा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, भाव मिटाओं दूजा॥
आँख न मुँदौं कान न रूँधौं, काया कष्ट न धारौं।
खुले नैन हँसि हँसि पहिचानौं, सुन्दर रूप निहारौं॥
सबद निरन्तर मनुवा राता, मलिन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहुँ न छूटे, ऐसी तारी लागी॥

कहहिं कबीर सहज यह रहनी, सो परगट करि गायी।
सुख दुख से कोई परे परम पद, सो पद है सुखदायी॥

यह पूरी तरह सजग, जागरूक और सचैतन्य महापुरुष की वाणी है। वे कहते हैं—हे संतो! सहज समाधि अच्छी होती है। गुरु की कृपा जब से हुई सुरति का अलग भटकना ही बंद हो गया। वास्तव में गुरु के सान्निध्य का, गुरु के मार्गदर्शन का आध्यात्मिक जगत में बहुत बड़ा महत्त्व होता है। यदि कोई शांतात्मा, स्थिर चित्त, उद्वेगशून्य संत पुरुष मिल जायें तो उनके सान्निध्य मात्र से ही मन शांत और उद्वेगशून्य हो जाता है और यदि उनका मार्गदर्शन और विचार प्राप्त हों तो फिर क्या पूछना!

इस पद में गुरुवर कबीर ने सहज समाधि शब्द का प्रयोग किया है। सहज का मतलब स्वाभाविक, नेचुरल, प्राकृतिक और समाधि का सीधा अर्थ होता है वह मानसिक अवस्था जहां मानसिक कष्ट, मानसिक द्वंद्व का समापन हो। जहां मानसिक कष्ट और द्वंद्व रहित स्थिति घटित हो और होश जागृत हो जाये वहां फिर जीवन का प्रत्येक कर्म पूजा हो जायेगा। सजगता के साथ जीवन व्यवहार करने पर अलग से साधना, पूजा या हवन-तर्पण की आवश्यकता ही नहीं होगी, सब कुछ सजगता में आ जायेगा। सद्गुरु अभिलाष साहेब जी कहा करते थे कि व्यावहारिक सहज समाधि है व्यवहार करते हुए विकारहीन अवस्था का बने रहना और आभ्यासिक सहज समाधि है विचारहीन अवस्था का होना।

हम जीवन व्यवहार करें उसमें चित्त आन्दोलन-शून्य है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, घृणा, चिंता आदि नहीं हैं तो फिर एक प्रकार की समाधि ही है। जब हम कुछ कर रहे हैं, वर्तमान में होकर कर रहे हैं और जगत का झंझा हमें नहीं व्याप रहा है तो इससे बढ़कर समाधि और क्या होगी! सद्गुरु कबीर ने इसी भाव को लेकर सहज समाधि की बात की है। देखते-सुनते, खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते यदि बोधभाव बना रहे और साथ में सजगता है तो यह सहज समाधि है।

परन्तु हम देखते हैं कि लोग अच्छे-खासे सम्पन्न हैं, पढ़े-लिखे और बाहर से समझदार भी हैं, तन से भी स्वस्थ हैं फिर भी मन बेकाबू, विचलित और अस्वस्थ है, अजागरूक है। जिसकी वजह से दुखी और परेशान हैं। दुनिया में अधिकतम लोग इसी तरह के हैं। शायद इसीलिए सद्गुरु कबीर को कहना पड़ा "तन धरि सुखिया काहु न देखा।" ऐसे लोगों के लिए होशपूर्वक जीना, सहजता और सजगता में जीना बड़ा कठिन जान पड़ेगा। सजगता और सहजता के लिए भी साधना अभ्यास की आवश्यकता होती है। धीरे-धीरे करते-करते शक्ति बढ़ती जाती है। इसके लिए पहली बात अपने अस्तित्व, अपनी सत्ता को समझना होगा कि मैं कौन हूं। दूसरी बात अपने जीवन में जो भी दुख का निर्माण होता है, जो भी दुख आता है उसके कारण की निष्पक्षता से जांच करनी होगी। इन दोनों बातों को गहराई से समझ लेने के पश्चात मन की चंचलता और उद्वेग सहज ही शांत हो जायेंगे।

बौद्ध दर्शन में दुख-मुक्ति के लिए मुख्य रूप से तीन बातें कही जाती हैं—प्रज्ञा, शील और समाधि। प्रज्ञा है विवेक, सही-गलत, उचित-अनुचित, कर्तव्य-अकर्तव्य, सत्ता-असत्ता को समझना और शील है सद्गुण-सदाचार का पालन। जो भी मानवीय सद्गुण हैं जिनके आचरण से हृदय की पवित्रता और शांति आती है, दया, प्रेम, करुणा, सेवा, परोपकार आदि, इनका पालन। फिर अन्ततः समाधि। बौद्ध परम्परा में जागरूकता और सजगता को बढ़ाने के लिए श्वास के प्रति सजगता, फिर शरीर के प्रति सजगता, संवेदनाओं के प्रति सजगता का अभ्यास किया जाता है।

मन का स्वभाव है वह स्थूलता को जल्दी पकड़ता है। इसलिए श्वास के प्रति, फिर शरीर के प्रति, फिर संवेदनाओं के प्रति क्रमशः सजग और सावधान होकर अपनी सजगता की शक्ति को बढ़ाकर व्यावहारिक जगत में भी जीवन की घटनाओं के प्रति सजग और सावधान रहा जा सकता है।

सजग चित्त से ही हम वस्तु तथ्य को, जगत की वास्तविकता को तथ्यतः देख और समझ सकते हैं और

यही समाधि जागरण की स्थिति है। सद्गुरु कबीर ने कहा "संतो सहज समाधि भली" हे संतो! सहज समाधि अच्छी है। यह प्रकृति अपने आप में सहज है। चांद, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र सहज हैं। जीवन सहज है, जगत सहज है। बस, हम अपने मन को असहज बनाकर जीवन को असहज बनाते जा रहे हैं। परिणामतः हमारा जीवन दुख और अवसाद से घिरता जा रहा है। सद्गुरु कबीर ने सहज समाधि और सहज ध्यान का प्रयोग किया है। बिना कोई बाह्य कल्पना या अवधारणा के अपने आप में होना, वर्तमान में रुक जाना सहज ध्यान है, सहज समाधि है। जो व्यक्ति विचार-प्रवाह या कल्पनाओं में न बहकर अपने स्वयं में वर्तमान होता है, उसके लिए न कोई सुख होता है और न कोई दुख होता है, फिर भी वह सुखी होता है "सुख दुख से कोई परे परमपद, सो पद है सुखदायी।"

जो व्यक्ति सहज होता है, वर्तमान में रहता है, होश में रहता है, वह जीवन का प्रत्येक व्यवहार, प्रत्येक काम सहजता से करता है। हमारे किसी भी काम और क्रिया-व्यवहार में असहजता या उत्तेजना है तो इसका मतलब है हम सहज नहीं हैं। आप खुद महसूस कर सकते हैं जिस समय आप सहज होते हैं, शांत होते हैं तो आपका काम अच्छा होता है। आपका वाणी-बर्ताव भी अच्छा होता है। आपका चलना-फिरना, घूमना सब कुछ सहज अच्छा होता है। इतना समझ लें कि जिस क्षण चित्त की सहजिक अवस्था होती है, जीवन व्यवहार, वाणी-बर्ताव में सहजता, सरलता और पवित्रता होती है उस समय अपने चित्त में भी विशेष शांति होती है। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने सहज समाधि की बात कही है। और जिस व्यक्ति की सहज अवस्था घटित हो जाती है उसी के लिए किसी ने कहा है—

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा।
शास्त्र विचिंतका कनिष्ठा तीर्थ यात्राऽधमाधमा॥

सहज अवस्था का होना अति उत्तम है, ध्यान-धारणा लगाना मध्यम है, शास्त्रों का चिंतन-मनन करना निम्न है और तीर्थ यात्रा अधम से भी अधम है। प्रतिक्रिया रहित चित्त का होना, सहज और सरल होना बहुत ऊंची बात है।

सद्गुरु कबीर इसी बात पर बल देते हैं। जीवन में जो भी करते हो सजगता और जागरूकता के साथ करो, होश के साथ करो तो वह पूजा बन जायेगा। हम किसी भी बात में, किसी भी कर्म में उत्तेजित और आंदोलित क्यों होते हैं? क्योंकि हम अपने आप में नहीं होते, वर्तमान में नहीं होते। वर्तमान में आन्दोलित या विचलित होने का कोई कारण ही नहीं बचता। वर्तमान में आन्दोलित हो भी नहीं सकते। विचार करके देखिये उत्तेजना, आवेग या व्यवहार का अतिक्रमण चित्त की अस्थिरता से ही संभव होता है। स्थिर, शांत और सहज चित्त में यह संभव ही नहीं है।

यदि हम गुरु कबीर से अनुप्राणित पारख सिद्धान्त के अनुसार सहज साधना, सहज समाधि या सहज ध्यान को समझना चाहें तो उसे तीन आधारों पर समझ सकते हैं—विवेक, द्रष्टा और स्थिति।

1. विवेक—विवेक वह मानसिक शक्ति है जिसके द्वारा हम सही-गलत, उचित-अनुचित, ग्राह्य-त्याज्य, गुण-अवगुण आदि को समझते हैं और इतना ही नहीं गलत, त्याज्य और अवगुण छोड़कर सही, उचित और ग्राह्य को लेते हैं। तात्पर्य है उचित-अनुचित, सही-गलत की परख करके गलत पक्ष को छोड़कर सही पक्ष को स्वीकार कर जीने का नाम ही विवेक है।

2. द्रष्टा—वस्तु, परिस्थिति, घटना को बारीकी से तटस्थ भाव से देखना, चाहे वह बाहर हो चाहे अंदर, उसके प्रति तटस्थता का भाव ही द्रष्टापन है। सामान्यतः हम वस्तु, घटना और परिस्थिति से अपने आप को ऐसे जोड़ लेते हैं कि हम उससे अपने को अलग ही नहीं कर पाते हैं।

भीड़ का द्रष्टा भीड़ से अलग होकर हुआ जा सकता है, पानी के प्रवाह का द्रष्टा पानी के प्रवाह से अलग होकर हुआ जा सकता है। किसी घटना और परिस्थिति का द्रष्टा उससे अपने को अलग करके ही हुआ जा सकता है। परन्तु हम अपने को इस प्रकार इन सबसे समायोजित कर लेते हैं कि उनको अलग समझ पाना ही

कठिन होता है और जब हम बाह्य घटना और परिस्थिति से अपने आपको जोड़ लेते हैं तो दुख, अशांति और पीड़ा का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार हम मन की भावनाओं और विचारों से भी अपने को जोड़ते हैं और अशांत होते हैं। पर जब इन्हें अलग देखने की कला जिसे द्रष्टापना या साक्षी भाव कहते हैं विकसित होती है, तो फिर मन शांत, सहज, सरल और स्थिर होने लगता है।

3. स्थिति—साधना की तीसरी अवस्था होती है स्थिति की, ठहराव की। जब हम सही-गलत, उचित-अनुचित को समझ लेते हैं और सही दिशा में चलने लगते हैं, चलने-फिरने, देखने-सुनने, खाने-पीने, उठने-बैठने, बोलने-बतलाने में विवेक का उपयोग होता है तो हम अन्यथा कोई भी क्रिया नहीं करते। फिर हमारी शक्ति बढ़ती जाती है और हम जीवन में अधिकाधिक सजग होने लगते हैं और यह सजगता अपने चित्त के प्रति भी होने लगती है। हम अपने प्रत्येक विचार और भाव के प्रति भी सजग होने लगते हैं। फिर हमारे चित्त का प्रवाह हमें कम प्रभावित करने लगता है और यही शक्ति सजगता की बढ़ती जाती है तो अपने आप में ठहराव, स्थिति बनने लगती है। अभ्यास काल में जब बैठते हैं तो अपने आप में शांत—कोई विचलन नहीं, कोई आन्दोलन नहीं, कोई विकार नहीं। जिसे स्वरूपस्थिति कहा जाता है। इसी को सुख की स्थिति या परम स्थिति कह सकते हैं। यहां चित्त में न किसी प्रकार की गांठ होती है और न ही किसी प्रकार का दुख होता है। यहां कोई बाह्य सुख-दुख तो नहीं होता किन्तु परमशांति की स्थिति होती है। इसके आगे इसे व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। यथा—

"गूंगे केरी शर्करा खाये और मुस्काये।"

"कहहिं कबीर गूंगे गुड़ खाया, पूछे सो क्या कहिया।"

यह पूर्णतः स्वसंवेद्य विषय है। इसे कहकर नहीं बताया जा सकता। जो साधक बाहर से पूरी तरह से उपराम होकर अपने में ठहरता है वही इसका अनुभव कर सकता है। इसी मस्तानगी में आकर ही सद्गुरु कबीर ने अनेक भावपूर्ण पद कहा है, जैसे—

गीत भजन

रचयिता—हेमन्त हरिलाल साहू

मन गति जान सुजान चला रे,
ताको हर घड़ी शुभ भला रे।

नहीं निंदा उपहास काहू को,
नही रागद्वेष मन माहीं।
आशा तृष्णा से ह्वै न्यारा,
सहजै सरल रह जाहीं॥

काम क्रोध मद लोभ निवारत, ये सब कुटिल कला रे॥

देव दुर्लभ मानुष तन पाकर,
बिगड़ी अपनी बना ले।
आखिर में तन खाक मिलेगा,
जीते जी मुक्ति पा ले॥

कर सत्संगत सद्गुरु सेवकाई, नाशत सकलो बला रे॥

हर घट में मैं राम निहारूं,
भाव नहीं कहीं दूजा।
तन से काम मन में राम,
जो कुछ करौं सोई पूजा॥

मीरा सी बन प्रेम दीवाना, हेमंत अभिमान गला रे॥

'संतो सहज समाधि भली।'

'मन मगन भया तब क्या बोले।'

'मन लागो मेरो फकीरी में।'

'भाई रे अद्भुत रूप अनूप कथ्यो है कहौं तो को पतियाई।'

जो तू चाहे मूझको, छाड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥
मूल गहे ते काम है, तैं मत भरम भुलाव।
कहहिं कबीर ते बाचिहैं, जाके हृदय विवेक॥
जब लग दिल पर दिल नहीं तब लग सब सुख नाहिं।

इस प्रकार की सद्गुरु कबीर की सैकड़ों वाणियां हैं जिन्हें पढ़-सुनकर आत्मस्थिति जनित मस्तानगी को जाना और समझा जा सकता है। ❑

अपने स्वरूप की याद करो

सद्गुरु कबीर की एक पंक्ति है—

अब कहु राम नाम अविनाशी,
हरि छोड़ि जियरा कतहुँ न जासी।

(बीजक, रमैनी 20)

साहेब अपनी श्रोताओं को आदेश देते हैं कि ऐ लोगो! तुम लोग अविनाशी राम का नाम कहो और हरि को छोड़कर अन्यत्र कहीं मत जाओ।

संसार में दो ही तत्त्व हैं एक अविनाशी दूसरा विनाशी। शरीर से लेकर संसार की जितनी वस्तुओं को जानते हैं, देखते हैं, उनमें एक भी वस्तु एकरस और स्थायी रहने वाली नहीं है, अपितु सब बदलने वाली हैं और बदलने वाली ही नहीं नष्ट हो जाने वाली हैं। कितना भी सम्हाल कर रखें, छाती-पेटे लगाकर और अपनी मुट्ठी में बंद करके रखें लेकिन दुनिया की परिवर्तनशीलता को, क्षणभंगुरता को कोई रोक नहीं सकता।

दुनिया को अपने अधिकार में रखना उसी प्रकार कठिन है जैसे पानी को मुट्ठी बांधकर पकड़ना। जितनी जोर से मुट्ठी बांधेंगे पानी उतनी ही जल्दी मुट्ठी से बाहर हो जायेगा। मुट्ठी बांधकर आप पानी को रख नहीं सकते। इसी प्रकार दुनिया की किसी भी वस्तु को स्थायी रूप से अपने अधिकार में रख नहीं सकते। उनका स्वभाव ही है परिवर्तनशीलता और क्षणभंगुरता। ऐसे क्षणभंगुर प्राणी और पदार्थों में जो मोह लगा होता है, रात-दिन उनका जप होता रहता है यही दुख और पीड़ा का कारण बनता है।

आदमी जब पैदा होकर दुनिया में आता है तो कितना मासूम होता है, जीवन कितना निर्मल होता है। कोई ऐब नहीं, कोई दोष-दुर्गुण नहीं, छल-कपट नहीं, मन में किसी प्रकार की कुटिलता नहीं, पूरा साफ-पाक जीवन होता है। बचपना में जैसी सरलता रहती है, जैसा चित्त निर्मल, कोमल और निर्दोष रहता है वैसा ही जिंदगी भर चित्त कोमल, निर्दोष और निर्मल रह सके तो इसी जीवन में बेड़ा पार हो सकता है। बच्चे का मन कितना कोमल और कितना साफ होता है। कोई दुराव-छिपाव नहीं जानता है बच्चा। वह तो जैसा होता है वैसा कह देता है। कोई छल-कपट नहीं होता है। उसके मन में कोई गांठ नहीं होती है।

आप लोगों ने देखा होगा और सबका यह अनुभव होगा कि कई बार खेलते-खेलते दो बच्चे आपस में झगड़ जाते हैं, मारपीट कर लेते हैं फिर दोनों बच्चे रोते-रोते अपने-अपने घर चले जाते हैं। दोनों की माता पूछती हैं कि क्यों रो रहे हो। दोनों बच्चे कहते हैं अमुक ने मुझे मारा। बच्चों की बात सुनकर दोनों माताओं का गुस्सा आसमान में चढ़ जाता है और आपस में लड़ जाती हैं। और जिन्दगीभर के लिए मन में गांठ बांध लेती हैं लेकिन बच्चे वहीं पर कुछ देर में फिर खेलना शुरू कर देते हैं। दोनों बच्चे भूल गये कि इसके पहले हम झगड़ा किये हैं। ऐसा निर्मल होता है बच्चे का चित्त।

आचार्य नरेन्ददेव उत्तर प्रदेश के एक बहुत बड़े विद्वान और बड़े राजनेता हुए हैं। उन्होंने लिखा है कि मैं छोटा बच्चा था तो एक बार अपने मामा के यहां गया हुआ था। मामा जी घर में थे। कुछ लोग मामा जी से मिलने के लिए आये। मामा जी ने कहा कि बेटा नरेन्द्र! जाओ उन लोगों से कह दो कि मामा जी घर में नहीं हैं। मैं निकला और उन लोगों से मैंने कहा कि मामा जी कह रहे हैं कि जाओ कह दो कि मामा जी घर में नहीं हैं। उन लोगों ने पूछा—मामा जी घर में तो हैं न? मैंने कहा—मामा हैं तो घर में लेकिन कह रहे हैं कि जाओ कह दो कि मामा घर में नहीं हैं।

माता-पिता की यह जिम्मेदारी होती है कि बच्चे को झूठ बोलना, छल-कपट करना, धोखाधड़ी करना न सिखायें किन्तु बच्चों को अच्छे संस्कार दें।

आप यही तो चाहते हैं कि आपके बच्चे आगे चलकर सज्जन, चरित्रवान एवं आज्ञाकारी बनें तो इसकी सीख बच्चों को उसके बचपन में ही देनी होगी। जो संस्कारी-सज्जन माता-पिता होते हैं वे अपने बच्चों को यही सिखाते हैं।

बहुत पहले की बात है। यह घटना प्रयागराज प्रीतम नगर की है। हमारे कुछ महात्मा सड़क पर घूमते हुए जा रहे थे। एक मकान के बाहर दरवाजे के किनारे दो बच्चे खड़े हुए थे। उन दोनों बच्चों ने महात्माओं को देखा तो दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाकर कहा—महाराज जी नमस्ते! महात्माओं को बड़ा अच्छा लगा कि ये अपरिचित बच्चे इतनी विनम्रता के साथ हाथ जोड़कर सिर झुकाकर नमस्कार कर रहे हैं। महात्माओं ने पूछा—बेटा! तुम्हारा नाम क्या है? उनमें से जो बड़ा बच्चा था वह फिर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर कहा—महाराज जी! मेरा नाम प्रदीप कुमार है।

यह सब सिखाया किसने होगा? उनके माता-पिता ने ही सिखाया होगा कि बड़ों से कैसी बात करनी चाहिए, कैसी विनम्रता लेनी चाहिए। ऐसे संस्कार देने वाले माता-पिता दुर्लभ होते हैं।

माता-पिता और बड़े लोग ही यदि झूठ बोलते हैं, छल-कपट करते हैं, गाली बकते हैं तो बच्चे भी वही सीख जायेंगे। कितने ऐसे लोग होते हैं जो बात-बात में गाली बकते रहते हैं। यदि माता-पिता गाली बकते हैं तो बच्चे भी गाली बकना सीख जाते हैं।

इस बात को आप अच्छी तरह समझ लें कि जो गाली बकता है वह असभ्य आदमी है चाहे वह कहीं का भी रहने वाला हो। गाली बकना भीतर की असभ्यता को प्रकट करना है। इसलिए कभी किसी की जबान से गाली नहीं निकलनी चाहिए। आप गाली बकेंगे तो धीरे-धीरे आपके बच्चे वही सीखेंगे और जब वे जवान होंगे और आप बूढ़े होंगे तो आपका बच्चा आपको गाली देना शुरू कर देगा, उस समय आप कहेंगे कि बच्चा कलयुगी हो गया। इसलिए माता-पिता की जिम्मेदारी होती है कि वे बच्चों को अच्छी सीख दें।

खास बात है छोटे बच्चों का जीवन, उनका मन बिल्कुल निर्मल, निर्दोष एवं गांठरहित होता है। ऐसे ही हमारा मन बन जाये निर्दोष, गांठरहित तो हमारा बेड़ा पार हो सकता है। छोटे बच्चों के मन में कहीं मोह नहीं होता, कहीं ममता नहीं होती, किसी के लिए अहंकार नहीं होता। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है दुनिया की वस्तुओं को देख-देखकर मोह बनाता जाता है। और जितना-जितना मोह बनाता जाता है उतना-उतना जीवन उलझता चला जाता है और दुखों से घिर जाता है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं—'अब कहु राम नाम अविनाशी' हे लोगो! दुनिया के क्षणभंगुर प्राणी-पदार्थों से अपने मन को हटाकर अविनाशी राम का नाम लो। क्योंकि 'यह संसार सकल है मैला, राम गहे ते सूचा। कहहिं कबीर राम नहिं छाड़ों, गिरत परत चढ़ि ऊंचा॥'

यह सारा संसार मैला है, गंदगी से परिपूर्ण है, विकारों से भरा हुआ है। पवित्र तो राम है और राम आपके भीतर बैठा हुआ है आत्मा के रूप में, चेतन के रूप में। सद्गुरु कबीर कहते हैं—'घट-घट में वहि सांई बसतु है, कटुक वचन मत बोल रे।' हर घट में वह राम बैठा हुआ है इसलिए किसी के साथ कटु वचन न बोलो।

आपका जो होना है, आपका जो स्वरूप है, आपकी जो चेतना है वही राम है। इस जीव, चेतन को संतों ने राम भी कहा है। 'रमंते योगिनो यस्मिन्निति रामः।' योगीजन जिसमें रमण करते हैं उस आत्म तत्त्व को महात्मा लोग राम कहते हैं। संतों ने कहा है—

रमें निरंतर आत्मा, सब घट आठों याम।
याही से संतन धरा, राम तासु का नाम॥

यह आत्मा इस शरीर में निरंतर रमण करता रहता है, निरंतर निवास करता रहता है इसलिए संत लोग इसे राम कहते हैं। रमण (निवास) करने के कारण इसका नाम राम कहा जाता है।

राम आपका अपना होना है, आपका अपना अस्तित्व है, आपकी सत्ता है। दुनिया में हर चीज छूट सकती है लेकिन आप अपने को कभी छोड़ नहीं सकते। आप कहीं जाते हैं तो घर को साथ लेकर नहीं जाते हैं, जमीन, खेत, खलिहान को साथ लेकर नहीं जाते हैं। लेकिन क्या आप अपने को छोड़कर जाते हैं? घर छोड़ दिये, जमीन छोड़ दिये, खेत-खलिहान छोड़ दिये, रुपये-पैसे छोड़ दिये; क्या आप अपने को भी छोड़

सकते हैं? जहां आप जायेंगे वहां आप तो होंगे ही। आप कौन हैं? मैं कौन हूं? इस चीज़ को समझें। दिखाई पड़ने वाला यह क्षणभंगुर शरीर मैं नहीं हूं किन्तु मैं शरीर का संचालक चेतन जीव हूं। साहेब कहते हैं तुम उसी की याद करो।

आदमी यदि निरंतर अपने स्वरूप को याद करता रहे तो कभी भयभीत नहीं होगा। उसका मन सब समय निर्भीक रहेगा। सद्गुरु कबीर दो बातों की बार-बार याद दिलाते हैं। पहली है मौत की याद और दूसरी है राम की याद। मौत की याद करेंगे तो जीवन में कभी पाप नहीं होगा, कहीं आसक्ति नहीं होगी, कहीं अपने को बांधेंगे नहीं। राम की याद करेंगे तो मन सदैव आश्वस्त और निर्भय होगा।

कोई माने या न माने एक दिन इस शरीर-संसार को छोड़कर जाना ही होगा। हमारे दादा, बाबा और परपाजा चले गये। कबीर साहेब ने कहा है—

दादा बाबा औ परपाजा, जिन्ह के यह भुइँ भाँड़े हो।
आँधर भये हियहु की फूटी, तिन्ह काहे सब छाँड़े हो॥

(बीजक, कहरा 5)

जवानी, सुंदरता, पद, अधिकार आदि दुनिया का ऐश्वर्य मिल जाता है तो लोग उसके अहंकार में ऐंठ कर बांह हिलाते हुए चलते हैं कि मेरे समान कौन है। लेकिन साहेब कहते हैं कि क्या तुम भूल गये, तुम्हारे दादा-बाबा भी इन्हीं प्राणी-पदार्थों का अहंकार करते थे। वे कहते थे कि ये मेरे हैं, वे मेरे हैं, किन्तु वे सब छोड़-छोड़कर चले गये। क्या इसी प्रकार तुम्हें जाना नहीं होगा? हम लोग अपने दादा-बाबा के शरीर को खोजना भी चाहें तो उनके शरीर का एक कण भी नहीं मिलेगा। एक दिन ऐसा आयेगा कि हमारे शरीर का भी एक कण नहीं मिलेगा किसी को। एक दिन ऐसा भी आयेगा कि हम-आप याद भी नहीं कर पायेंगे कि संसार में हमारी अमुक-अमुक चीजें थीं। पूरा का पूरा भूल जाना होगा।

ऐसे छुटने वाले प्राणी-पदार्थों का बड़ा अहंकार होता है। साहेब कहते हैं—न तो इनका अहंकार करो और न इनके लिए पाप करो। आदमी सोचता है सब मर गये तो मर गये मैं अभी नहीं मरूंगा, अभी तो बहुत दिनों तक जीवित रहूंगा।

एक युवक था। स्वस्थ शरीर, सुंदर और बलवान, साथ-साथ धनवान भी। सारी योग्यता मिली हुई थी। उन योग्यताओं का उसे बड़ा अहंकार था। वह कहा करता था कि लोग कहते हैं तुम मर जाओगे। अरे, मैं तो कभी सोचता ही नहीं कि मैं मर जाऊंगा। जब सोचता नहीं हूं तो मेरी मौत कैसे होगी? मौत का समय आयेगा तो मैं खाट पर उठकर बैठ जाऊंगा। मेरी मौत नहीं होगी। लेकिन दो-चार साल बीते तब उसके शरीर में भयंकर रोग हो गया, शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया और उसी रोग में उसका शरीर छूट गया, उसकी मौत हो गई। तब लोगों ने कहा कि अब इससे कैसे पूछें कि तुम्हारी मौत कैसे हो गई?

मानें या न मानें मौत एक दिन आनी ही आनी है। यह पक्की बात है कि हमारा हर कदम हमें मौत के नजदीक ले जा रहा है। हम जितने कदम रखते जा रहे हैं मौत के नजदीक पहुंचते जा रहे हैं। कौन-सा कदम आखिरी कदम होगा कहा नहीं जा सकता। कौन-सी सांस आखिरी सांस होगी कहा नहीं जा सकता है। इसलिए किसी के लिए पाप न करें। जिन वस्तुओं के लिए पाप करते हैं, जिन लोगों के लिए पाप करते हैं वे वस्तुएं छूट जायेंगी, वे लोग छूट जायेंगे। लेकिन पाप कर्मों का फल अकेले स्वयं को भोगना पड़ेगा। इसलिए साहेब कहते हैं कि क्षणभंगुर संसार में कहीं अपने मन को रमाओ मत। कहीं आसक्त होकर बैठ मत जाओ, किन्तु अविनाशी आत्म तत्त्व का स्मरण करो। कबीर साहेब ने कहा है—

सुमिरण करहू राम का, छाड़हु दुख की आस।
तर ऊपर धै चापिहैं, जस कोल्हू कोटि पिचास॥
सुमिरण करहू राम का, काल गहे हैं केश।
ना जानों कब मारिहैं, क्या घर क्या परदेश॥

(बीजक, रमैनी साखी 17, 19)

क्या घर में क्या परदेश में मौत कब आ जायेगी कुछ कहा नहीं जा सकता। इतना याद रखें कि मौत जब

भी आयेगी तो सुबह से शाम के बीच या शाम से सुबह के बीच आयेगी। और सोमवार से रविवार के बीच ही आयेगी। कोई आठवां दिन नहीं है मौत को आने के लिए। मौत का आना पक्का है। इसलिए उस घड़ी को याद करें कि जब इस संसार से जाने का समय होगा तब मेरी स्थिति क्या होगी?

जैसे विद्यार्थी सालभर पढ़ाई करते हैं और पढ़ाई के आठ-दस महीने के पश्चात परीक्षा का समय आता है और परीक्षा देता है। रिजल्ट का दिन आता है तो जो विद्यार्थी ठीक से पढ़ाई किया हुआ होता है वह प्रसन्न होता है कि आज मेरी पढ़ाई का रिजल्ट निकलेगा। मैं अच्छे नंबर से पास होऊंगा, किन्तु जो विद्यार्थी ठीक से पढ़ाई नहीं करता है, यहां-वहां घूमता रहता है, व्यर्थ में समय व्यतीत करता रहता है, वह रिजल्ट के दिन भयभीत रहता है। वह सोचता है कि आज रिजल्ट न निकले तो अच्छा है। दो-चार दिन और टल जाये तो अच्छा है। क्योंकि उसे मालूम है कि मुझे तो फेल ही होना है। जो विद्यार्थी पढ़ाई करता है वह निर्भीक होता है, जो विद्यार्थी पढ़ाई नहीं करता वह भयभीत होता है।

हमारे जीवन के भी रिजल्ट का दिन आने वाला है। वह मौत का दिन होगा। वह घड़ी आनी ही है। जो कुछ हमने जीवन भर किया है उसका सारा रिजल्ट सामने आयेगा ही है। उससे हम बच नहीं सकते हैं। इसलिए काम अच्छे ढंग से करना होगा। जीवन को अच्छे ढंग से जीना होगा। अनासक्त होकर जीवन जीयें। सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें, लेकिन कहीं अपने मन को बांधकर न रखें।

परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी कहा करते थे कि अनासक्ति और प्रेम ये जीवन के दो महान तत्त्व हैं। प्रेम में स्वर्ग फलता है और अनासक्ति से मोक्ष मिलता है। जितना प्रेम का व्यवहार होगा उतना ही जीवन में स्वर्ग उतरेगा, सुख मिलेगा और जितनी अनासक्ति होगी, सबसे मन निर्मोह होगा उतना ही इस जीवन में स्वतंत्रता का, निर्भीकता का और मोक्ष का अनुभव कर सकेंगे।

इसीलिए सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं, क्षणभंगुर प्राणी-प्रदार्थों से मन को हटाकर अविनाशी आत्मतत्त्व में जोड़ो। और उसके बाद 'हरि छोड़ि जियरा कतहुँ न जासी' हरि को छोड़कर अन्यत्र और कहीं मत जाओ।

हरि कौन है? जो हमारे अज्ञान को हरण कर ले वह हरि है। वह है ज्ञान, संत और गुरु। संत और गुरु ज्ञान-दान देकर हमारे अज्ञान को दूर करने वाले होते हैं और जब हमारे अज्ञान को दूर कर देते हैं तो जीवन का अंधकार दूर हो जाता है।

अंधकार में रास्ता चलना पड़े तो कितनी पीड़ा होगी? कितनी ठोकरें खानी पड़ेगी? कितना भटकना होगा? और जब प्रकाश हो जाता है तब ज्यों का त्यों सारी वस्तुएं साफ-साफ दिखाई पड़ती हैं। ठोकर नहीं खाना पड़ता, भटकना नहीं पड़ता।

इसी प्रकार अनादिकाल से लेकर आज तक हम अज्ञान-अंधकार में भटकते और ठोकरें खाते आ रहे हैं। कितनी ठोकरें मिलीं, कितनी पीड़ा मिली कुछ कहा नहीं जा सकता। आज हम अज्ञान-अंधकार से अलग हों उसके लिए हमें सन्तों एवं गुरुजनों की शरण में जाना होगा। और उनकी शरण में जाकर उनके निकट होकर सेवा-भक्ति करते हुए ज्ञान प्राप्त करना होगा।

बिना विनम्रता आये, बिना अपने मन के अहंकार और कामनाओं को मारे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है, किन्तु हम सन्तों के पास जाते हैं तो अहंकार लेकर जाते हैं कि मैं इतना धनवान, मैं बड़ी जाति का, बड़े कुल का, इतना बड़ा विद्वान। सन्तों के पास जाऊंगा तो नीचे बैठना पड़ेगा। अहंकार यहां भी आड़े आ जाता है। अहंकार जब आड़े आता है तब संतों से कुछ सीख नहीं पाते।

इसलिए साहेब कहते हैं कि सन्तों के पास जाओ तो विनम्र होकर जाओ—

संत मिलन को जाइये, तजि माया अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे धारे, कोटिन यज्ञ समान॥

संतों से मिलने के लिए जाओ तो माया अर्थात ममता और अभिमान को छोड़कर जाओ। ममता है मन का मोह, मन की आसक्ति, कामना, वासना। यही माया है। माया कहीं अलग आकाश में नहीं बैठी हुई है कि आप पर कूदकर सवार हो जाये। जहां-जहां आपका मन फंसा हुआ है, जहां-जहां आसक्ति लगी है वहीं-वहीं आपके लिए माया तैयार होती है। मन के मोह को छोड़कर माया कहीं है नहीं। कबीर साहेब कहते हैं—

मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
तीन लोक संशय परी, मैं काहि कहौं समुझाय॥

मन और माया दोनों एक ही बात है। मन में ही माया समायी हुई है लेकिन संसार में लोगों के मन में संदेह घर किया हुआ है कि माया किसी ईश्वर या भगवान की शक्ति है जो हमें भटकाने वाली है, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है। मन का मोह, गंदी आदतें, आसक्ति, कामना, वासना, यही माया है। यही हमें भटकाने वाली है।

ममता और अभिमान को छोड़कर संतों के पास जायें और उनसे ज्ञान प्राप्त करें। 'हरि छोड़ि जियरा कतहुँ न जासी' साहेब कहते हैं—हे लोगो! हरि को छोड़कर, सन्तों की शरण को, ज्ञान को छोड़कर और अपनी आत्मा की शरण को छोड़कर कहीं भी मत जाओ।

ज्ञान, गुरु और अपनी आत्मा इनको छोड़कर जहां जायेंगे वहां केवल भटकाव मिलेगा। भटकते-भटकते अनादि काल से आ रहे हैं और इनकी संगत फिर छोड़ दिये तो फिर भटकाव शुरू हो जायेगा। इसलिए अविनाशी राम का, अपने स्वरूप का चिंतन करो, बार-बार उसी का स्मरण करते रहो और इसका ज्ञान पाने के लिए विनम्र होकर संतों-गुरुजनों की शरण में जाकर सेवा-साधना करो। सेवा-साधना से मंजे हुए शुद्ध चित्त में ज्ञान टिकता है और सारा भ्रम-अज्ञान दूर होकर जीवन में स्थिरता आती है। मन आत्मतृप्त, आत्मसंतुष्ट होकर शांत हो जाता है।

—धर्मेन्द्र दास

खो गया है आदमी

रचयिता—श्री सीताराम सिंह विश्वबंधु

मंदिरों और मस्जिदों में खो गया है आदमी,
चर्च गुरुद्वारों में जाकर सो गया है आदमी।
कर मसक्कत आसमां के चांद तक पहुंचा जरूर,
जिंदगी के हासिये पर हो गया है आदमी॥

आजकल तो ढूंढ़ना आसान है भगवान को,
पर ये मुश्किल है कि कोई ढूंढ़ ले इन्सान को।
आदमी ने रच दिया है त्रासदी इतिहास की,
हर तरफ अच्छी तरह विष बो दिया है आदमी॥

हर महीने हर जगह त्योहार तो मनने लगे हैं,
आंधियों के वेग में जलते दिये बुझने लगे हैं।
आँख है पर रोशनी गायब है कोई क्या करे,
खुदकशी के रास्ते पर हो गया है आदमी॥

किस नदी का जल पिया है हो गया बेहोश सा,
जल रहा है रात दिन पर दिख रहा खामोश सा।
भावना में खेलना अच्छा नहीं खुद के लिए,
'विश्वबन्धु' करनी पे अपने रो रहा है आदमी।

मंदिरों और मस्जिदों में खो गया है आदमी,
चर्च गुरुद्वारों में जाकर सो गया है आदमी॥

यू टर्न

कितना अद्भुत है सड़कों पर लगा ये साइन बोर्ड। कभी अपने मन के विचार, क्रोध, लोभ, नफरत, तनाव, महत्त्वाकांक्षाओं को यू टर्न करके देखिये। अपने मन की तरफ मुड़ना अक्सर सभी दुखों, तकलीफों, बुरे ख्यालों, क्रोध, लोभ और न जाने किन-किन बातों से हमें बचा लेता है। मन का यू टर्न सभी व्याधियों का, सभी तनाव का हरण कर लेता है। ***—अज्ञात***

कहानी

वे उनमें थे, जो जन्मते हैं, पर मरते नहीं

लेखक—डॉ. रामचरण महेन्द्र

समय-समय पर मनुष्य समाज में ऐसी महान विभूतियां चमकती रही हैं, जिन्हें गुदड़ी के लाल कहा जा सकता है। इन चमकते हीरों के हाल आये दिन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। यहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों से संकलित कुछ महकते जीवन फूलों की प्रेरक घटनाएँ दी जा रही हैं, जो आज भी यह प्रमाणित करती हैं कि 'कीर्तिर्यस्य स जीवति', वे उनमें थे, जो जन्मते हैं, पर मरते नहीं...

1. सौ मोहरों में मैं बेशकीमती मानवता को न बेचूँगा

एक बार इटली की एक नदी में ऐसी बाढ़ आयी कि मध्य के कुछ भाग के अतिरिक्त, जिस पर एक मकान बना हुआ था, सारा का सारा पुल बह गया । उस मकान के दुःखी आर्त मनुष्य खिड़कियों से झाँक-झाँककर करुणा-व्यथित स्वर में किनारे खड़े लोगों को प्राण बचाने के लिए चीख-चीखकर पुकारने लगे। मकान का वह टूटा हुआ भाग बहने को था। बाढ़ के रूप में मौत मुँह फैलाये बेचारों को निगलने को तैयार थी। भयावह दृश्य था!

'अब बहे! अब गये!! अब डूबे, अब मरे। मौत अट्टहास करती, भयानक आकृति की मृत्यु!!'

नदी के तटपर दुःखी दर्शकों की विशाल भीड़ खड़ी दर्दनाक दृश्य देख रही थी। सब उन्हें बचाना चाहते थे, पर अपनी जिन्दगी तो सबको प्यारी है। कौन किसी के लिए व्यर्थ ही प्राण दे। दुनिया कितनी स्वार्थी है।

इतने में उस जन-समूह में एक अमीर आदमी दयार्द्र हो उच्च स्वर में बोला—यदि कोई आदमी उस पार के संकट में फँसे आदमियों को बचा दे, तो मैं उसे सौ मोहर इनाम में दूँगा। है कोई साहसी; जो इस इनाम को जीते और इस बाढ़ में से इन अभागों की प्राणरक्षा करे।

एक गरीब युवक सुनता रहा। परोपकार उसके मन में जगा। घोषणा फिर दुबारा दुहरायी गयी। उच्च स्वर में दूर-दूर तक घोषित की गयी। उससे न रहा गया।

उस गरीब युवक ने साहस किया। वह एक नाविक था। शरीर से हृष्ट-पुष्ट और मानवता की सहायता के लिए अदम्य साहस और उत्साह लिए वह नाव लेकर लहरों की परवा न करते हुए नदी के उस शेष भाग तक चला गया। लोग उसके जीवन को संकट में देखकर समझ रहे थे कि यह भी प्राण खो बैठेगा। इनाम का क्षुद्र मोह उसे सदा-सर्वदा के लिए दुनिया से बिदा कर देगा। पैसे का मोह अंधा है।

पर वह साहसी जीता। सैकड़ों मुसीबतें सहता, मौत से लड़ता और उसे परास्त करता, वह वीर अन्ततः उन संकट में फँसे व्यक्तियों को पुनः सुरक्षित तट तक ले आया। अब सभी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर रहे थे। अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में प्रशंसा कर रहे थे। संकट से बचे हुए व्यक्ति भी कृतज्ञता से झुके हुए थे।

तब वह धनाढ्य व्यक्ति हर्षित मुद्रा में अपनी घोषणा के अनुसार उस निर्धन युवक को सौ मोहरें इनाम में देने लगा। सब समझ रहे थे कि इस बड़े इनाम को पाकर वह गरीब युवक अपने भाग्य की सराहना करेगा।

पर यह क्या!

उस युवक ने सौ मोहरों का वह इनाम लेने से इन्कार कर दिया।

अमीर व्यक्ति दम्भपूर्वक बोला—तुम अपने प्राणों की परवा न कर मौत के मुँह में जाकर इन मुसीबत में फँसे आदमियों को निकाल लाये हो। हर क्षण तुम्हारे प्राणों के नष्ट होने का डर था। तुम्हें अपनी इस मजदूरी को सहर्ष ले लेना चाहिए, यह लो अपनी सौ मोहरें। गिन लो, पूरी हैं न ?'

इसपर उस नाविक युवक ने जो कहा, वह मानवता की धरोहर है! उसपर आज भी सबको गर्व होना चाहिए।

वह बोला—'मैं सौ मोहरें लेकर मानवता को नहीं बेचूँगा। मैं धन के लालच में इन बेचारों को नहीं बचाया है। यह रकम इन्हीं बेसहारा आदमियों को दे दीजिये, क्योंकि मेरी अपेक्षा इन्हें इनकी अधिक आवश्यकता है।

सत्य ही कहा है—

वस्यो भूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि॥ (अथर्ववेद 16/9/4)

हे मनुष्यो! ईश्वरपर पूर्ण आस्था रखो और इस संसार में परोपकार करते हुए श्रेष्ठ पद प्राप्त करो। परोपकार की पूँजी सदा अक्षय कीर्ति देनेवाली दैवी विभूति है। परोपकारी इस लोक में प्रसन्न रहता है और मरने के बाद सदा याद किया जाता है।

2. एक विधवा का अनुकरणीय त्याग

मुंगेर से भागलपुर जाने वाली सड़क पर लगभग डेढ़ सौ वर्ष का पुराना एक पक्का कुआं है। इसे श्यामो पिसनहारी का कुआं कहते हैं। कुएं के आसपास नीम, पीपल और गूलर के पेड़ हैं, जिनकी ठंडी छाया में यात्रियों को विश्राम करने के लिए अच्छा स्थान बन गया है। आज से करीब 150 वर्ष पहले श्यामो नामक सत्तर वर्षीय बुढ़िया ने इसे बनवाया था। इसका नाम आजतक लोगों की जबान पर चला आता है। इसकी कहानी कुछ इस प्रकार है—

जब श्यामो केवल 13 वर्ष की थी तो विवाह के एक वर्ष के भीतर ही विधवा हो गयी थी। ससुराल में उसका तिरस्कार किया गया और उसे गालियाँ दी गयीं। वह फिर वापिस बाप के पास आ गयी। कुछ दिन तो माँ-बाप जीवित रहे, पर उनका स्वर्गवास हो जाने पर सब कुछ भार उसी पर आ गया। श्यामो ने सोचा—

'युवावस्था बैठे रहने से नहीं, मेहनत-मजदूरी और काम करने से कटेगी। श्रम की रोटी खाना ही मनुष्य का धर्म है। जब तक हाथ-पाँव चलते हैं, कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए। और धर्मपर डटे रहना उन्हीं के लिए सम्भव होता है, जो अपने शरीर और मन को काम-धंधे में जुटाये रहते हैं। फालतू बैठे रहने वाले मनुष्य के दिमाग में वासना और पाप के विचार आते हैं। उनका रास्ता भटक जाने का भी डर बना रहता है। मैं परिश्रमकर अपने हाथों की रोटी कमाकर खाऊँगी और कुछ परोपकार का कार्य भी करूँगी।' बस, उसका संकल्प बन गया। सत्संकल्प में परमेश्वर का निवास होता है।

उसने श्रम का तपस्यामय जीवन अपनाया। विधवा युवती प्रातःकाल दो घंटे रात रहे उठती और दिन निकलने तक पाँच सेर आटा पीस लेती। फिर प्याऊ पर काम करती! घास काटकर बेचती। जो भी काम मिलता, उसी को मनोयोगपूर्वक करती रहती। किसी का भोजन बना देती तो कभी किसी के कपड़े धो देती; सफाई में सहायता दे देती। दोपहर में सुस्ता कर फिर आटा पीसना प्रारम्भ करती। फिर तीसरे पहर चर्खा चलाकर सूत कातती। खूब श्रम की आदत पड़ गयी। जैसा काम मिला वह करती और पैसे इकट्ठी करती रही।

जीवनभर में उसने 500) रुपये कमाये। सोचा कि इन्हें किसी धर्म के काम में लगाना चाहिए। आज जहाँ पक्की सड़क है, पहले यहाँ कच्चा रास्ता था। पास कोई जल पीने का स्थान न था। यात्रियों को इसकी बड़ी कठिनाई रहती थी। उसने अपने जीवनभर की सारी संचित कमाई वहाँ अच्छा पक्का कुआँ बनवाने में लगा दी। उन दिनों सस्ते का जमाना था। इतनी थोड़ी-सी पूँजी में वह कुआँ बन गया। आज भी वह कुआँ उस विधवा स्त्री की धर्मपरायणता, परिश्रमशीलता, संयम और अपूर्व त्याग का स्मरण बना हुआ है।

क्या हम इस प्रकार का साहस कर कोई पुस्तकालय, धर्मशाला या प्याऊ इत्यादि नहीं बनवा सकते?

दिवंगत श्यामो की आत्मा लोगों को परमार्थ और उदारता का उपदेश देती है। भले ही उसे कोई न सुने वह कहती है कि हम चाहे जिस स्थिति में हों सत्कर्म करें, दानशील बनें और सुपथ से कभी विचलित न हों।

3. उसकी कीर्ति आज भी महक रही है!

अम्बाला पैसेंजर भटिंडा के पास की पुलिया पर से गुजरी तो अचानक विस्फारित नेत्रों से इंजन-ड्राइवर श्री दौलतराम ने देखा कि सामने की पुलिया टूटी हुई है। यदि ट्रेन उस पर से गुजरेगी, तो भयानक नुकसान होगा और हजारों व्यक्ति मक्खियों की मौत मर जायेंगे।

उसका हृदय मानवीय दया और करुणा से अभिभूत हो उठा। वह ट्रेन की इस भयानक दुर्घटना को सहन नहीं कर सकता था; पर वह क्या करे ?

मृत्यु का ताण्डव उसके सामने था। वह कोई योजना सोच रहा था।

उसने पलक मारते सोचा, तुरंत निर्णय किया। क्षणभर में ही उसने अपनी देह और प्राणों का पूरा बल लगाकर बैकुअम ब्रेक दबाया। यही वह सोच सका।

इंजन एक बड़े झटके के साथ ठहर गया। डिब्बों में झटके लगे, मुसाफिर गिरे, कोई इधर लुढ़का तो कोई उधर! किंतु सौभाग्य से मरा कोई नहीं!

कम-से-कम दो हजार आदमी मरने से बच गये। यह सबसे बड़ा पुण्य कार्य था। पर दौलतराम का क्या हुआ?

इंजन का झटका इतना भयंकर था कि उसने दौलतराम को ब्रेक में बुरी तरह उलझा दिया। वह देर तक उसी में फँसा रहा—और हाय! उसी में उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। मानवता का फूल असमय ही मुरझाकर धूल में गिर पड़ा!

निश्चय ही दौलतराम की मृत्यु एक शहीद की मृत्यु है! वह उनमें एक था, जो जन्मते हैं, पर अपनी कीर्ति चिरस्थायी छोड़ जाते हैं। दौलतराम का बलिदान आज भी अमर है। वह मानवता के अँधेरे पथ को आलोकित करने वाला है।

4. युद्ध के भयावने अँधियारे में महकती मानवता!

दूसरे महायुद्ध की बात है—

एक जापानी सैनिक गम्भीर रूप से घायल हो गया। उसके रक्त बह रहा था, धीरे-धीरे कमजोरी आ रही थी और चेहरा मुरझाया जा रहा था। मौत की काली छाया लम्बी होकर उसपर पड़ रही थी। यह स्पष्ट था कि अब वह इस दुनिया में कुछ ही क्षणों का मेहमान था।

एक भारतीय सैनिक की प्रसुप्त मानवता अचानक उस युद्धभूमि में भी जाग्रत् हो उठी। उसने सोचा शत्रु है तो क्या! अब इन मरते हुए क्षणों में तो इस सैनिक पर दया ही दिखानी चाहिए। मृत्यु के इन आखिरी क्षणों में शत्रुता कैसी!

उसने अपनी बोतल से चाय निकाली और एक छोटे गिलास में भरकर वह उस घायल सैनिक को पिलाने चला। उसने धीरे से बड़े प्रेमपूर्वक उसका सिर अपनी गोद में रखा, चाय का प्याला उसके मुँह से लगाया। बोला—'मेरे मित्र! बुद्ध के देश के इस सैनिक के हाथों युद्ध के मोर्चे पर वीरता देखी, अब प्यार के हाथों चाय पिओ।'

किंतु हाय! क्या? यह कैसी बर्बरता? मानवीयता के हृदय में भयंकर आघात!

उस दुष्ट जापानी ने दया का बदला यह दिया कि अपना चाकू निकालकर उस भारतीय सैनिक की रान में घोंप दिया। भारतीय सैनिक के रक्त बहने लगा।

अब दोनों फिर गिर पड़े। भारतीय सैनिक के घात तो लगा, पर जापानी सिपाही की कमजोरी के कारण घात घातक न हुआ।

कुछ घंटों बाद जापानी घायल सिपाही भारतीय अस्पताल लाया गया। भारतीय सिपाही की भी मरहम-पट्टी हो गयी। जब वह ठीक हो गया, तो वही हिंदुस्तानी सैनिक दुबारा चाय का प्याला लेकर गया और उसे प्रेमपूर्वक पिलाकर ही लौटा।

जापानी सिपाही अब पश्चात्ताप से जल रहा था। उसे अपने किये पर बड़ी आत्मग्लानि हो रही थी ।

जापानी सिपाही ने कहा—दोस्त! मैं अब समझा कि बुद्ध का जन्म तुम्हारे ही भारत देश में क्यों हुआ था!'

मानवता जीवन की रातरानी है, जो भयावने अँधियारे में भी महकती है, गमकती है।

5. वह जो अपनी दयालुता और साहस के कारण असाधारण हो उठा!

रेलवे का एक साधारण कर्मचारी गेटमैन पन्नालाल पाठक था। उसका काम रेलगाड़ी आने के समय मुख्य सड़क का द्वार बंद करना था। इस छोटे से काम में भला कौन परोपकार का काम हो सकता है? आप कहेंगे, 'इसमें कुछ भी परोपकार का काम नहीं हो सकता।' पर आपका अनुमान ठीक नहीं है ।

बड़ौदा-मथुरा पैसेंजर ट्रेन रतलाम स्टेशन पर आ रही थी। सिगनल हो गया था। पन्नालाल ड्यूटी के अनुसार सड़क का फाटक बंद करके एक ओर हो गया था। रात के आठ बजे थे। संयोग से तीन मजदूर स्त्रियां दिनभर काम करके वापस घर लौट रही थीं, थकी-मांदी और अपने बच्चों को देखने के लिए उत्सुक! गाड़ी कुछ फासले पर थी। उन्होंने सोचा जल्दी से फाटक के पास से निकल कर लाइन पार कर लेंगी। वे धीरे से तार से निकलीं। संयोग से कंटीले तार में उनका कपड़ा अटक गया और वे बुरी स्थिति में फंसी रह गयीं।

किसी प्रकार सुलझ कर वे पटरी पर आयी ही थीं कि रेलगाड़ी की धड़धड़ाहट सुनकर बुरी तरह घबरा गयीं। साहस जाता रहा। रेलगाड़ी का इंजन उन्हें पीसकर चकनाचूर कर देने के लिए उनके सामने था।

पन्नालाल ने यह सब देखा और प्रबल साहस के साथ कूदकर लाइन पर आ गया।

उसने एक ही साँस में उन दोनों महिलाओं को अपनी भुजा में दबाया और फौरन लाइन से बाहर खींच लाया।

अब गाड़ी एकदम सामने थी, मृत्यु का दृश्य था। फिर भी उसने साहस किया और तीसरी मजदूरिन को बचाने के लिए कूदा, पर हाय!

क्रुद्ध इंजन ने उसे एक भयंकर टक्कर देकर दूर फेंक दिया और तीसरी महिला का शरीर पीसता-काटता हुआ, वह निर्मम इंजन धड़धड़ाता हुआ आगे बढ़ गया।

पन्नालाल इस सब संघर्ष से मूर्च्छित हो गया और लगा कि वह अब इस दुनिया में नहीं रहेगा!

पर अस्पताल में उसकी विशेषरूप से देखभाल की गयी। डाक्टरों ने इस मानवता के सिरमौर को मौत के मुँह से खींच लेने की बड़ी कोशिश की। ईश्वर भले कामों में सदा सहायक होता है। भाग्य से वह स्वस्थ हो गया।

मेज पर होश में आते ही उसके मुँह से जो शब्द निकले वह यह थे—'उस तीसरी बहिन का क्या हुआ?'

वाह रे मनुष्य! मृत्यु के इन क्षणों में भी अपनी नहीं उस गरीब मजदूर स्त्री की ही चिन्ता में मग्न था उसका मानस!

मनुष्य की सोयी हुई मानवता कभी भी जाग्रत् होकर परोपकार के अद्भुत कर्म करा सकती है। वे कार्य जो मनुष्य किसी भी सांसारिक लोभ के वश में होकर नहीं करता, अन्तरात्मा के दैवी प्रभाव में एकाएक कर बैठता है। उसके अंदर सोया हुआ ईश्वर जागकर उसे परोपकार के शुभ कार्यों की ओर तीव्रता से प्रेरित करता है।

अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम्। परा दुःष्वप्न्यं सुव॥ (ऋग्वेद (5/82/4)

याद रखिये, जो ईश्वर की आराधना के साथ-साथ पुरुषार्थ और परोपकार करते हैं, उनके दुःख और दारिद्र्य दूर होते हैं और ऐश्वर्य बढ़ता है।

(गीता प्रेस से प्रकाशित 'महकते जीवन फूल' से साभार)

आज़ादी

हर इंसान को आज़ादी का अधिकार है और उसे पूर्ण आज़ाद होना चाहिए—

1. **अपनों में इतना प्रेम हो कि किसी से बात करने में हिचक न हो।**
2. **प्राप्त उपलब्धियों में इतना संतोष हो कि दूसरों का स्वर्णिम ऐश्वर्य भी आकर्षित न कर सके।**
3. **बुद्धि में इतनी स्थिरता हो कि सिगरेट, शराब और अंडा-मांस ग्रहण करने का संकल्प भी न उठे।**
4. **मन में इतनी अनासक्ति हो कि रूप, सौंदर्य प्रभावित न कर सके।**
5. **चित्त में इतनी स्ववशता हो कि क्रोध, चिंता, ईर्ष्या और द्वेष अंदर प्रवेश न कर सके।**
6. **निजता का इतना आनंद हो कि परता के लिए मन में उत्सुकता भी न जागे।**

यह हमारी व्यक्तिगत आजादी है। जिसका अनुभव करना सबका परम धर्म है।

(इंटरनेट से)

परमार्थ पथ

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

सारा संबंध उपाधि है और वह क्षणभंगुर है। इसलिए उसको लेकर हर्ष-अमर्ष में न पड़े। वह तो शून्य होता जाता है और सारा संबंध शून्य होकर रहेगा। मैं शून्य का द्रष्टा सदा स्थिर सत्ता हूं। जड़-प्रकृति शून्य नहीं, अपितु नित्य प्रवहमान सत्ता है; किंतु उसका हमारा संबंध क्षणिक है, अतएव संबंध शून्य हो जाता है। संसार में जब तक शारीरिक जीवन चल रहा है, सब तरफ से सावधान रहना है। इस संसार में स्थिर बुद्धि के सज्जन हैं, किंतु अस्थिर बुद्धि के लोग बहुत हैं। किसी के मोह और वैर में उलझना नहीं है। सबसे निवृत्त होकर स्वरूपस्थिति में ही रहना है।

* * *

इस क्षणभंगुर, दुख भरे, अनात्म संसार में पुनः आने की कोई आवश्यकता नहीं है। अविद्यावश संसार में रस लगता है, इसलिए जीव इस दुख-वन संसार में बार-बार आता है और देह धारणकर पीड़ा में भटकता है। जब स्वरूपबोध और वैराग्य के प्रखर प्रकाश में अविद्या-अंधकार का पूर्ण विनाश हो जाता है, तब संसार की वास्तविकता का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि यह केवल दुखों से भरा है। इस स्थिति में जीव संसार से पूर्ण निष्काम होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। अतएव वह देह में रहते-रहते संसार में मुक्त रहता है। इस दशा में विचरते हुए कभी और कहीं यह मिट्टी का लौंदा (देह) गिर जाता है और जीव सदा के लिए दुखहीन विदेह हो जाता है।

* * *

यात्रा में कहीं अधिक सुविधा की जगहें मिलती हैं और कहीं कम सुविधा की। परंतु मन सब जगह शांत रहता है, फिर दृश्यों के कम-अधिक प्रभावित नहीं कर पाते। अंत में क्या शेष रहता है? शेष तो स्वतः आत्मा ही रहता है। इसलिए जो आत्मा में स्थित है, वह सब समय परमानंद में है। चारों तरफ प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों का दृश्य मिलता है, यही बाहरी माया है, किंतु यदि मन की माया जो मोह है, वह नहीं है, तो बाहरी माया बंधन नहीं बनती। जो आज सुंदर दिखता है, वह आगे सुंदर नहीं रह जायेगा। दृश्य तो अत्यंत परिवर्तनशील है। वह टिकने वाला नहीं है। मोक्ष है, जड़दृश्य से सर्वथा उदासीनता। बाहर से उदासीन व्यक्ति ही अपने में स्थिर होता है।

* * *

मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के शरीर, अपना माना हुआ शरीर, मकान, गांव, शहर, जंगल, पर्वत आदि सारे दृश्य जड़ प्रकृति के कार्य हैं और ये कुछ दिनों में धूल-रेत हो जाने वाले हैं। तुम्हारा अपना माना हुआ शरीर भी शीघ्र ही धूल-रेत होगा। इसके बाद तुम्हारा संबंध किससे रहेगा? इस तथ्य पर गंभीरता से सोचो। यह तथ्य एक-दो व्यक्ति के लिए नहीं है; अपितु विश्व के सभी व्यक्तियों के लिए है। वस्तुतः तुम्हारा आत्मा के अलावा कुछ है ही नहीं। समाधि में जाओ, जो निर्विकल्प दशा है, कुछ न सोचना है। इसमें देर-देर तक रहकर विदेह-स्थिति का अनुभव करो। सारी चमक-दमक मिथ्या है, बदलने वाली और विनशने वाली है। देखना, सुनना और जानना बंद कर आत्मलीन होने के अभ्यास में दृढ़ होओ। महा शांति।

* * *

अपने विषय में हर समय सोचो। समय मूल्यवान है, और निरंतर भागा जा रहा है। अपने बंधनों को हर समय काटो। जब अवसर आये तब दूसरे के कल्याण के लिए राय दे दो। दूसरों की आलोचना तथा गुण-दोष-दर्शन के चक्कर में मत पड़ो। तुम्हारा स्थिर संबंध केवल तुमसे है। तुम अपने भव-बंधनों को काटकर स्वरूपस्थिति में वर्तमान करो। यही जीवन की परम

उपलब्धि है। शेष द्वैत संबंध तो स्वप्न है। उसको महत्त्व न दो। आत्मचिंतन, आत्मशोधन तथा आत्मस्थिति ही आध्यात्मिक साधक की परम साधना है।

* * *

बीती हुई बातों को मन में उठाने-धरने का काम न करे। वे सब मरी हुई हैं, फिर सड़ी लाशों में पड़कर सड़ने का काम क्यों करे? आगे की कल्पना न करे। इस प्रकार पूर्व स्मृति और आगे की कल्पना त्यागकर वर्तमान में वासनाहीन मौन होकर अपने आप में शांत रहे। देखो, लोग संसार छोड़-छोड़कर जा रहे हैं। जीवन कितना व्यर्थ हो जाता है। सार्थक जीवन उसका है जो वासना-त्यागी है। जगत छूटने वाला है। उसकी वासना हम क्यों ग्रहण करें। मोक्ष का काम यही है जड़-दृश्य का पूर्ण अभाव करते रहना।

* * *

हर आत्मा प्रेतवाधा से ग्रस्त है। वह प्रेत है मलिन मन। मन के नाना संकल्प-विकल्पों, प्रतिक्रियाओं, कुतर्कों, भावनाओं से हर आत्मा पीड़ित है। मनुष्य पेट भर खाता है, तन भर कपड़ा पहनता है और मकान में रहता और सोता है, परंतु अपने मन के उद्वेगों से ग्रस्त रहता है। इस मन-प्रेत को स्वयं हमें झाड़ना पड़ेगा; क्योंकि हमने ही देह-गेहादि में अहंता-ममता कर मन को विकारग्रस्त कर रखा है। हमने ही मन को बिगाड़ा है; अतएव हमें ही उसे ठीक करना पड़ेगा। बोधवान साधना अभ्यासियों से राय एवं प्रेरणा मिलती है, साधना हमें ही करना पड़ेगा। अपने मन को सुधारकर अपने वश में कर लेना ही बहादुरी है और जीवन-सफलता है।

* * *

निर्विकार अथवा साक्षीभाव में रहना परिपक्व साधक का लक्षण है। शरीर से लेकर सारा दृश्यमान संसार अनात्म प्रवहमान जड़ है, जो सदा के लिए छूट जाना है। अतएव उसका स्मरण करने की आवश्यकता नहीं है। जो सहज उसका स्मरण होता है, उसमें विरक्तिभाव भरा रहना चाहिए। अधिकतम साक्षीभाव में रहना चाहिए और समय-समय से निर्विकल्प दशा में ठहरते हुए कालक्षेप होना चाहिए। देह कुछ दिन रहते हुए मानो है ही नहीं। इसका आज-कल में अनंतकाल के लिए विलुप्तीकरण हो जाना निश्चित है। उसके साथ पूरे संसार का सदा के लिए विस्मरण। ऐसे शरीर-संसार को लेकर क्या मोह-शोक!

* * *

प्रखर वैराग्य और दृढ़ अभ्यास की निरंतरता का यह परिणाम होता है कि मन कर-बदर हो जाता है। साधक चलते-फिरते, उठते-बैठते मन का साक्षी बना रहता है और मन शांत रहता है और जब वह चाहता है, तब निर्विकल्प हो जाता है। उसको सब कुछ की क्षणभंगुरता हरक्षण दृष्टिगोचर रहती है और अपने शाश्वत स्वरूप का निरंतर बोध बना रहता है। जो शरीर और संसार सदैव के लिए छोड़ देना है, उसके संबंध में अपना क्या प्रयोजन है? प्रयोजन एक ही है कि संसार से कोई प्रयोजन न प्रतीत हो। हर समय सब कुछ से निष्काम होकर रहना परमपद में निवास है और यह काम अत्यंत सरल है। संसार को समझाकर इस दशा में रहने की मृगतृष्णा छोड़ दो।

* * *

चाहे नयी और चाहे पुरानी बातों के स्मरण होने पर और उनमें तत्पर होने पर उनके संबंध में हानि-लाभ की कल्पना होने लगती है; यही भवव्याधि है। स्मरण ही से संसार सामने होता है। साधक का काम है कि वह हर समय साक्षीभाव में वर्तमान करे। स्मरणों से उदास रहने से वे शांत होते रहते हैं। जीव में जगत है ही नहीं। मोक्ष का पूरा काम तभी सिद्ध होगा जब मन से जगत को सब समय खारिज रखा जायेगा। जगत से दुख के अलावा कुछ मिलने वाला नहीं है और अंततः जगत का सदैव के लिए छूट जाना पक्का है। अतएव निर्विकल्प समाधि ही अमृत है जिसमें जगत नहीं रहता है। ❑

मौत से डरता नहीं मैं

लेखक—प्रो. रमाकान्त दीक्षित

क्या आप जानते हैं कि मनुष्य का मन किसके नाम को सुनकर कांप-कांप उठता है, किसके नाम से उसकी धड़कनों की गति बढ़ जाती है और किसके नाम से वह भीगी बिल्ली बन जाता है? उसका नाम है—मृत्यु!

संसार में अगर सबसे अधिक किसी चीज से मनुष्य भयभीत रहता है तो मृत्यु से। वह इस बात को भली-भांति जानता है कि मृत्यु अवश्यंभावी है। तो भी वह मृत्यु को धता बताकर अमरता के स्वप्नों में स्वयं को भुला देना चाहता है। वह भूल जाता है कि यह शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित है और इसे अन्त में पंच तत्त्वों में ही मिल जाना है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी शरीर को नश्वर बताते हुए कहा है—

वासांसि जीर्णाणि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

अर्थात—जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है।

एक उर्दू कवि ने इसी बात को अपने अन्दाज में इस प्रकार कहा है—

"यों तो एक आता है, जाता है जहां से दूसरा,
उसकी महफिल का मकां, कभी खाली होता नहीं।"

मनुष्य काल को अपनी मुट्ठी में बांधकर, उससे छुटकारा पाना चाहता है। पर, काल उसकी मुट्ठी से पारे के समान फिसलकर उसकी पहुंच से दूर हो जाता है, और वह देखता ही रह जाता है। मौत को चकमा देने का एक किस्सा है—

कहते हैं लुकमान हकीम ने अपनी मृत्यु के आगमन के दिन को जानकर अपने जैसे सात पुतले हू-ब-हू बनाकर, उन्हें आराम-मोढ़ों पर बैठा दिया। एक खाली मोढ़े पर वह भी बैठ गया। मृत्यु-दूत लुकमान हकीम को लेने आया, लेकिन वह चक्कर में पड़ गया। असली लुकमान हकीम को नहीं पहचान सका और उलटे पैरों लौट गया। तब जन्म-मृत्यु लेखाकार चित्रगुप्त ने उसे सुझाया कि वह फिर जाये और मोढ़े पर बैठी सभी आकृतियों को देखकर कहे—'वाह! वाह!! क्या कमाल के पुतले बनाये हैं पर... पर.. एक कमी कर दी!' तब ऐसा सुनते ही असली लुकमान हकीम उठकर पूछ बैठेगा—'बताओ तो भला, क्या कमी कर दी?' बस तभी असली लुकमान हकीम को, उन पुतलों के निर्माता को, पकड़ लेना। आखिरकार वह पकड़ा गया और मृत्यु को प्राप्त हुआ।

वैज्ञानिक भी मृत्यु के रहस्यों को जानने में लगे हैं। उनका प्रयत्न है कि प्राणी को मृत्यु कभी न आये। वह सदा के लिए अमर हो जाये। रूस के वैज्ञानिक इस दिशा में कुछ अधिक ही क्रियाशील दिखाई दिये। कहा जाता है कि उन्होंने एक व्यक्ति को कांच की अलमारी में इसलिए बन्द कर दिया कि उसके प्राणों को कहीं से भी निकलने का रास्ता न मिल सके। अलमारी में कोई भी स्थान ऐसा न था कि अन्दर की हवा बाहर आ सके या बाहर की हवा अन्दर जा सके। उसे अलमारी के अन्दर आक्सीजन पर रखा गया। परन्तु, उस व्यक्ति की मृत्यु के क्षण आते ही अलमारी के शीशे चटक-चटक कर टूट गये। फिर देखते ही देखते उसके प्राण पखेरू उड़ गये। ये उदाहरण महाकवि जयशंकर प्रसाद के 'कामायनी' के इस कथन की सार्थकता को सिद्ध करते दिखाई देते हैं—

मृत्यु अरी चिर निद्रे।
तेरा अंक हिमानी सा शीतल॥

यक्ष ने भी जब युधिष्ठिर से प्रश्न करते हुए पूछा था कि संसार में आश्चर्यजनक क्या चीज है? तो इसका उत्तर देते हुए युधिष्ठिर ने कहा था कि मनुष्य इस बात को अच्छी तरह जानता है कि मृत्यु उसकी इहलीला समाप्त कर देगी तो भी वह पाप कर्मों में लिप्त रहता है—यही संसार में सबसे आश्चर्यजनक बात है।

मृत्यु के सम्बन्ध में धृतराष्ट्र ने भी विदुर से पूछा था—

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्व वेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्पय च तत्सर्वमान्युः केनेह हेतु॥

अर्थात—समस्त वेदों में जब मनुष्य सौ वर्ष की आयु वाला कहा गया है, तब ऐसा कौन-सा कारण है, जिससे मनुष्य पूर्ण आयु प्राप्त नहीं कर पाता।

अतिमानो अतिवादश्च तथात्यागो नराधिप।
क्रोधाश्चात्म विधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥
एत एवाय यस्तीक्षणः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान्घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥

अर्थात—हे नराधिप! अधिक अभिमान, अधिक विवाद, अत्याग, क्रोध, अपने परिपोषण की कामना और मित्र द्रोह—ये छहों प्राणियों की आयु का छेदन करने वाली तलवारें हैं। मनुष्य को मृत्यु नहीं मारती, ये ही मारती हैं।

मनुष्य का शरीर भले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। भले ही उसके जीवन काल में सुख-दुख, यश-अपयश आदि द्वन्द्व आते रहते हैं, परन्तु उसके उत्तम कार्य, उसका सद्धर्म, उसका शुद्ध चरित्र अमरता पा लेते हैं। यक्ष और युधिष्टिर के प्रश्नोत्तर से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया—

"कहा न त्रिया जन सके,
कहा न सिन्धु समाय।
कहा न पावक में जले,
किसे काल नहिं खाय?"

तब युधिष्ठिर ने उत्तर में कहा—

"पुत्र न त्रिया जन सके,
मन नहिं सिन्धु समाय।
धर्म न पावक में जले,
नाम काल नहिं खाय॥"

शेक्सपियर का कथन भी इस संदर्भ में द्रष्टव्य है—

Cowards die many times before their death, but valiant tastes once.

अर्थात—कापुरुष जीवन में कई बार मरते हैं परंतु वीर जीवन में एक ही बार मरता है।

मौत से घबराना तो कायरता है। इसको लेकर चिन्तित होना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है—तो फिर उचित क्या है? इसका उत्तर कबीर ने पहले ही दे रखा है—

"ऐसी करनी कर चलो।
तुम हँसो जग रोय॥"

जीवन है संग्राम

रचयिता—रामनिवास वर्मा

ले हिम्मत से काम बन्दे,
जीवन है संग्राम!!
ऐसे-वैसे बीति न जाये,
जीवन की ढलती शाम!!
जब तक इस जीवन धारा में,
लगे न पूर्ण विराम!!
तब तक समझो ऐ प्रिय बन्दे,
है आराम हराम!!
संघर्ष बिना नहिं मिलता बन्दे,
मंजिल और मुकाम!!
वीरों की यह बाट है भाई,
कायर का नहिं काम!!
सर पर बांध कफन जो निकले,
बिन सोचे परिणाम!!
आज उसी के चरणों पर ही,
करती प्रकृति विश्राम!!
हिम-आतप-वर्षा भी जिसके,
रोक सके न पांव!!
ऐसे कर्मठ भुजबल को है,
चाह आज हर ठांव!!
करना हो तो कर लो प्यारे,
नाम के लायक काम!!
वरना ढोते रह जावोगे,
मानव तन का चाम!!
धरना हो तो धर लो प्यारे,
जिन आतम का ध्यान!!
वरना खोते रह जाओगे,
इस जीवन की शान!!

इसलिए मौत से भय कैसा! कंपन कैसा! इसका आतंक कैसा! इसके नाम से दिल की धड़कन का बढ़ना कैसा! हमें तो अपने लिए मौत को ललकारते हुए, एक उर्दू कवि के स्वर में स्वर मिलाकर यह कहना समीचीन है—

"मौत से डरता नहीं मैं,
मौत मुझसे डर चुकी है।
मौत से मरता नहीं मैं,
मौत मुझसे मर चुकी है।"

बीजक चिंतन

तृतीय प्रकरण : ज्ञान चौंतीसा

जीव ही सम्राट है

छ

छछा आहि छत्रपति पासा।
छकि किन रहहु मेटि सब आसा॥
मैं तोहीं छिन छिन समुझावा।
खसम छाड़ि कस आपु बँधावा॥ 7॥

शब्दार्थ—छत्रपति=सम्राट, महाराजा, जीव। छकि=तृप्त। खसम=पति, मालिक, स्व-स्वरूप।

भावार्थ—छ अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि हे साधक! सम्राट तो तेरे पास ही है। 'पास' भी कहना एक तरीका है। वस्तुतः तू ही सम्राट है। अतएव अन्य सारी आशाएं छोड़कर क्यों नहीं अपने स्वरूपभाव में तृप्त हो रहे हो! मैं तुम्हें क्षण-क्षण समझा रहा हूं। तुम अपने पतित्व एवं श्रेष्ठत्व को छोड़कर, अपने आप को क्यों बंधनों में डाल रहे हो!॥ 7॥

व्याख्या—मेरी कोई मनोवांछित वस्तु हो और वह मेरे पास ही पड़ी हो, परन्तु उसे न समझकर मैं उसके लिए दरबदर की खाक छानता फिरूं, तो यह मेरा केवल अज्ञान है। आदमी परमात्मा को, राम को, खुदा को, मोक्ष एवं परमानन्द को दरबदर खोजता फिरता है। वह नदियों, पर्वतों, तीर्थों, पोथियों, मत-मतांतरों की खाक छानता है। तो भी उसे निराशा ही हाथ लगती है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—'वह तो तेरे पास है'। 'पास' का अर्थ कोई यह न समझ ले कि अपने से अलग है। यहां शाब्दिक नहीं, लाक्षणिक अर्थ करना चाहिए। सद्गुरु कहते हैं कि समझ ले तो पास में है और न समझे तो दूर है।

पास एवं निकट का मतलब है वह तू ही है। तेरे से पृथक कोई परमात्मा, राम, खुदा, गॉड नहीं है। इसीलिए इसके भावार्थ में वे कहते हैं—"छकि किन रहहु मेटि सब आसा" अर्थात सभी आशाएं छोड़कर क्यों नहीं तृप्त हो जाते हो! सारी आशाओं-वासनाओं के छूट जाने पर ही वह दशा आती है जो कृतार्थरूप है। ईश्वर, परमात्मा एवं मोक्ष की आशा भी आशा ही है, और सभी आशाओं को मिटाने के क्रम में ऐसी आशाएं भी कैसे रह सकती हैं! आशाएं उन्हीं की की जाती हैं जो अपने से दूर के हों और जो अपने से दूर की वस्तुएं हैं, उनसे परम तृप्ति नहीं मिल सकती। इसलिए अपने से भिन्न वस्तुओं की आशा छोड़ देने की बात कही गयी है। सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने ठीक ही कहा है—"केवल मुक्ति आशा रहे, तेऊ है बंधमान। सुखिया सदा निराश पद, सुन वैराग्य निधान॥" संस्कृत के पंडितों ने कहा—"आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।" सारी आशाओं के छूट जाने पर ही साधक को परम तृप्ति मिल सकती है।

जीव अपना खसम अपने से अलग खोजता है। यही उसका अज्ञान है। सबका खसम तो जीव है, परन्तु वह अपनी महत्ता को नहीं समझ पाता है, इसलिए भटकता है। सद्गुरु कहते हैं—"मैं तोहीं छिन छिन समुझावा। खसम छाड़ि कस आपु बँधावा॥" मैं तुम्हें बारम्बार समझा रहा हूं कि तुम स्वयं सम्राट हो, तुम स्वयं सारे ज्ञान-विज्ञान रूप चित्रों के स्वामी हो। फिर तुम अपने स्वरूपभाव, स्वामीभाव को छोड़कर कैसे मन की मान्यताओं में अपने आप को बंधा रहे हो!

वासना-त्याग मोक्ष में कारण

ज

जजा ई तन जियत न जारो।
जोबन जारि युक्ति तन पारो॥
जो कछु युक्ति जानि तन जरै।
ई घट ज्योति उजियारी करै॥ 8॥

शब्दार्थ—जोबन=यौवन, जवानी। युक्ति=उपाय। पारो=करने में समर्थ होओ।

भावार्थ—ज अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि हे साधक! जीते जी इस शरीर को घोर तपस्या में मत जलाओ। किन्तु जवानी का प्रमाद तथा

कामादि वासनाओं को जलाकर शरीर से साधना करो। यदि वासनाओं की निवृत्ति का उपाय जानकर शरीर की आसक्ति जला दे, तो साधक इसी जीवन में ज्ञान-ज्योति से आलोकित हो जाये॥ 8॥

व्याख्या—सद्गुरु यहां तीन बातें बताते हैं। पहली बात है शरीर को घोर तपस्या में मत जलाओ। दूसरी बात है शरीर और जवानी का अंहभाव जलाकर साधना करो। तीसरी बात है कि यदि मनुष्य साधना करते हुए वासनाओं का त्याग करता है तो उसे इसी जीवन में ज्ञान का आलोक मिल जाता है।

तपस्या और साधना में काफी अन्तर है। गरमी में अग्नि तापना, ठंडी में जलशयन करना, वर्षा में खुले आकाश में खड़ा रहना, लम्बा उपवास करना, नंगा रहना आदि कायाकष्ट उठाना तपस्या है। यह या तो प्रतिष्ठा पाने के लिए किया जाता है या अज्ञान में। इसका फल संसारियों से सम्मान पाना है और तपस्वी में अंहकार तथा दंभ का भरना है। महान दार्शनिक धर्मकीर्ति कहते हैं—"वेदादि किसी पुस्तक को स्वतः प्रमाण मानना, जगत बनाने वाला कोई कर्ता होगा—यह मानना, किसी नदी में स्नान करने मात्र से धर्म की पूर्ति मानना, मानव में ऊंच-नीच जाति मानना और शरीर को संताप देकर पाप का नाश मानना—जिनकी बुद्धि मारी गयी है उनकी मूर्खता की ये पांच निशानियां हैं।"[1]

साधना है इन्द्रिय और मन पर विजय पाने का प्रयास। इसमें मैथुन, मोहादि भोगों का त्याग तो होता है, किन्तु शुद्ध सात्त्विक एवं संतुलित आहार, विहार, व्यवहार लेते हुए सेवा, स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन आदि द्वारा वासनाओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयास चलता है। संसारी विषय-भोगी होता है। तपस्वी शरीर को संताप देने वाला होता है। किन्तु साधक बीच का रास्ता पकड़ता है। वह न भोगी होता है और न काया-पीड़क। वह भोगों से विरत होकर, मध्यवर्तीय भोजन-वस्त्र लेते हुए आराम से रहता है और स्वाध्याय, चिंतन तथा ध्यान से वासनाओं पर विजय प्राप्त करता है।

सद्गुरु कबीर मध्यममार्गी हैं। संसार के सभी साधक इसी पथ से कल्याण पाते हैं। महात्मा बुद्ध ने अनजान में घोर तप किया, परन्तु जब उन्हें अपनी भूल का परिचय हुआ तब वे भी इसी मध्यममार्ग पर आ निकले।

अतएव सद्गुरु कहते हैं कि साधक इस शरीर को पीड़ा न दे। किन्तु इसके अंहकार का त्याग करे। जवानी एवं शरीर की उष्मा को, हृदय में रही हुई एषणा, चाह एवं लिबिडो को न तो जला दे न इन्द्रियों के मलिन भोगों में खर्च करे, किन्तु उनका मार्गांतरीकरण कर दे। उनके रास्ते को बदल दे। उन्हें वासना-निवृत्ति, स्वरूपस्थिति की प्राप्ति में एवं अपने और दूसरे के कल्याण-कार्य में लगा दे। यदि साधक घोर तप द्वारा शक्ति को न जलाकर, केवल विषय-वासनाओं को जलाता है और अपने तन तथा मन की शक्ति से साधना करके सत्पथ में चलता है तो उसे इसी जीवन में ज्ञान का प्रकाश मिलता है। शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को एक ही उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति में लगा देने से साधक का हृदय शीघ्र ही ज्ञान-ज्योति से प्रकाशित हो जाता है।

कूचर-कायर साधक ही असफलता का रोना रोते हैं। अपने लक्ष्य में पूर्ण समर्पित साधक शीघ्र ही अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेते हैं।

बाहर ढूंढ़ना छोड़ो

झ

झझा अरुझि सरुझि कित जान।
अरुझनि हींड़त जाय परान॥
कोटि सुमेरु ढूँढ़ि फिरि आवै।
जो गढ़ गढ़ै गढ़ैया सो पावै॥ 9॥

शब्दार्थ—हींड़त=खोजते हुए। सुमेरु=पर्वत। गढ़=किला; वासना, अध्यास। गढ़ैया=जीव।

भावार्थ—झ अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि हे मानव! तुम उलझते-सुलझते हुए कहां जा रहे हो! अपना लक्ष्य खोजते हुए उलझन में ही तुम्हारे प्राणपखेरू उड़ जायेंगे। तुम सुमेरु पर्वत-जैसे करोड़ों बीहड़ स्थानों में अपना लक्ष्य खोजकर लौट

---

1. वेदप्रामाण्यं कस्यचित् कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः। संतापारम्भः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पंच लिङ्गानि जाड्ये॥ (प्रमाणवार्तिक-स्ववृत्ति 1/342)

आओ, तो भी उसे न पाओगे। हां, यह जीव वासनाओं का जो किला गढ़ लेता है, उसी में स्वयं बन्द हो जाता है॥ 9 ॥

व्याख्या—अरुझना फंसने को कहते हैं और सरुझना छूटने को। स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, घर, काम, क्रोध आदि मोटी माया में यदि कोई उलझा हुआ है तो इसे सभी लोग मानते हैं कि यह आदमी फंसा है। परन्तु यदि कोई देवी-देवताओं तथा परोक्ष ईश्वरादि की उपासना में लगा है, तो इसे लोग सुलझना मानते हैं। सद्गुरु कबीर इसको भी अंततः उलझना ही मानते हैं। अपने स्वरूपभाव को छोड़कर जीव जहां कहीं भी लगता है, सब उलझन ही है। इसीलिए वे कहते हैं—"अरुझि सरुझि कित जान" अर्थात उलझ-सुलझकर कहां जा रहे हो? तुम स्वरूपभाव एवं आत्मभाव को खोकर चाहे जितना भी धर्म-कर्म एवं ईश्वर-ब्रह्म कह लो, सब उलझन है। सबसे बड़ी गलती तुम्हारी यह है कि तुम अपने लक्ष्य को बाहर खोजते हो। यह निश्चित समझ लो कि खोजते-खोजते तुम्हारे प्राण समाप्त हो जायेंगे, परन्तु तुम छूंछे ही रह जाओगे। जीव का परम लक्ष्य तो उसका अपना स्वरूप ही है। वह बाहर खोजने का विषय ही नहीं है। उसे तो सत्संग एवं विवेक द्वारा समझना है।

अतएव कोई परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, राम, रहीम आदि नाम लेकर चाहे उसे करोड़ों बीहड़ स्थानों में खोजे, तीर्थों और मंदिरों में खोजे, वह कहीं नहीं मिलेगा। क्योंकि वह कोई बाह्य वस्तु नहीं है। हां, इन भटकावों का फल यही होगा कि नाना भ्रांतिपूर्ण मान्यताओं एवं वासनाओं का मन में एक किला बन जायेगा और जीव उसी में बन्द हो जायेगा।

परमात्मा को बाहर खोजने वाले इतने जड़ीभूत हो जाते हैं कि वे हर समय अपने मन से बनाये हुए परमात्मा के चित्र के सपने देखते रहते हैं। इस अलीक धारणा से उन्हें आरम्भ में सात्त्विकता अवश्य प्राप्त होती है; किन्तु आगे चलकर यह भ्रम उनके स्वरूपज्ञान-पथ का रोड़ा हो जाता है।

ध्याननिष्ठ हो रहें सदा

रचयिता—श्रीमती मीना जैन

ध्याननिष्ठ हो रहें सदा, ध्यान आत्म केंद्रित हो
अपना कोई नहीं यहाँ, यह तथ्य सर्व विदित हो

अंतर्मन में खोज कर सुख, स्वविवेक जगाओ
मोह भ्रम में न भूलो, ज्ञान का दीप जलाओ
स्वकेंद्रित हो भावना, कर्म हमारे पर हित हों

अज्ञानतावश मिलता कष्ट, ज्ञानवान सानन्द सदा
उदासीन हो रहना है, कलेवर मिटता सर्वदा
आत्मा अपना अविनाशी, विचार विकार रहित हों

अत्युत्तम स्थिति है, निजस्वरूप में स्थित होना
आत्म जागृति सर्वोत्तम, सदा स्थिर चित्त होना
आत्म बोध जागृत कर, मानव सदा सुरक्षित हो

मैं शुद्ध चेतन रूप हूँ, यह सारा जग निस्सार है
सुख दुख सारे देह के, मिथ्या सकल संसार है
तज अहंकार, चेतन शील हो, निजात्म में समाहित हो

भोग बुद्धि है देह तक, आत्म तत्त्व को जान लो
छीना-झपटी, कलह-कलुष, भोगवाद को त्याग दो
आत्म स्वरूप निखार कर, मानव! आत्म विजित हो

चाहे अशुभ हो या शुभ जहां तक मनःकल्पनाओं का जाल है, सब बंधन ही है। मन का साक्षी चेतन ही अपना स्वरूप है।

इस सन्दर्भ में सद्गुरु मुख्य दो बातें बताते हैं। पहली बात है अपना लक्ष्य बाहर ढूंढ़ने की वस्तु नहीं है। उसे तुम जितना ही बाहर ढूंढ़ते हो उतना ही उलझते हो। दूसरी बात है कि तुम अंत में वही पाओगे जिसकी वासना बना लिए हो। तुम अपने ही कर्मजाल में बंधते रहते हो।

अतएव सद्गुरु का निर्देश है कि बाहर ढूंढ़ना छोड़कर अपने स्वरूप को समझो तथा सांसारिक वासनाएं त्यागकर स्वरूपस्थिति प्राप्त करो। ❑

कहानी

गांव का दर्द

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

जब वह यशोदा मौसी के घर पहुंचा, रात के नौ बज चुके थे और मौसी खा-पीकर सो गई थी। कुछ देर के लिए थमी बारिश फिर से तेज हो गई थी। उसकी आवाज सुनकर मौसी कांखती-कराहती दरवाजा तक आई थी। किन्तु नरेश को सामने देख वह भावविभोर हो गई थी।

'जा बेटा, जल्दी कपड़े बदल ले वर्ना सरदी लग जायेगी। तब तक मैं चाय बनाती हूं।' मौसी परछी के दूसरे छोर पर बने चूल्हे में कंडा और बबूल की सूखी लकड़ियां डालकर सुलगाने लगी। थोड़ी देर धुंधवाने के बाद चूल्हा जल उठा था। भीतर से एक मचौली और पीढ़ा लाकर वह चूल्हे के पास बैठ गई।

'आओ बेटा, यहीं आ जाओ चूल्हे के पास।' नरेश की ओर उड़ती नजर डालकर मौसी चाय बनाने में व्यस्त हो गई। नरेश मचौली पर जा बैठा और दोनों हाथ फैलाकर आग तापने लगा। उसके ठीक पीछे खूंटी में लटके लालटेन का प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। लालटेन और चूल्हे के मिश्रित प्रकाश में अधेड़ अवस्था पार कर गई मौसी का निराश चिंताग्रस्त सांवला चेहरा कुछ अजीब-सा लग रहा था।

'कितने साल बाद यहां आये हो बेटा! कुछ याद भी है? क्या तुम्हें इस अभागन की कभी याद नहीं आती थी?' मौसी के स्वर में उलाहना भी था और प्यार भी। 'सच कहती हो मौसी! वर्षों बीत गये, चाहकर भी मैं न आ सका। पुलिस की नौकरी में क्या गया, सारे सगे-सम्बन्धियों से नाता ही टूट गया। सबको बस यही शिकायत है। इस बार लम्बी छुट्टी लेकर आया हूं। सारे रिश्तेदारों के घर जाऊंगा।'

'अच्छा किया बेटा, बहुत अच्छा किया। बाल-बच्चों को एक नजर देखने के लिए मन लगा रहता है। वैसे भी अब इस जिन्दगी का क्या भरोसा। अचरज है कि इस पिंजरे में अब तक पंछी न जाने किस मोह में अटका हुआ है?' मौसी पतीली में उबलती चाय को छान रही थी।

'मौसा की मृत्यु का समाचार बहुत देर से मिला था मौसी। विश्वास नहीं हुआ था मुझे।' मौसी के विचारों में आयी उपरामता से नरेश भीतर ही भीतर विचलित हो उठा था।

'विश्वास तो मुझे भी नहीं हुआ था बेटा। न तुम्हारे मौसा की मृत्यु पर, न ही अरुण के घर छोड़कर चले जाने पर। लेकिन सच दोनों ही थे। पहले अरुण गया, फिर तुम्हारे मौसा और मैं अकेली रह गई।'

मौसी के हाथ से चाय लेकर वह सुड़कने लगा। थोड़ी-सी बची चाय मौसी स्वयं पीने लगी।

'तुम्हें अरुण को नहीं जाने देना था मौसी। उसके घर छोड़कर चले जाने का समाचार सुन बहुत दुख हुआ था मुझे।' आज यशोदा मौसी की दयनीय स्थिति देख उसका मन रो पड़ा था।

'अरुण घर छोड़कर न जाता तो मेरे हिस्से का दुख कौन भोगता बेटा। मैं तो जन्मजात अभागन हूं। कहते हैं मेरे पैदा होते ही मेरी मां मर गई। पिता ही मेरे सब कुछ थे, मां भी और बाप भी। फिर भी मां के प्यार की तृष्णा सदा मन में बनी रही। यहां ब्याह कर आयी तो लगा कि मेरे दुख के दिन बीत गये, किन्तु यह मेरा भ्रम था। तुम्हारे मौसा अरुण का घर छोड़कर जाना बर्दाश्त नहीं कर सके। भीतर ही भीतर गुमसुम घुटते रहे और मुझे पता भी न चला। एक रात जो गहरी नींद में सोये तो फिर नहीं जागे। सबेरे तक मेरा सब कुछ लुट गया था। रात सुहागन सोई थी, सबेरे विधवा होकर उठी। बेटा, जिसने सदा साथ निभाने का वादा किया था वही बीच मझधार में छोड़कर चला गया।' मौसी का व्यथित स्वर बड़ी देर तक उसके जेहन में गूंजता रहा।

सचमुच अरुण को लेकर क्या-क्या सपने नहीं संजोये थे मौसी ने 'अरुण की बहू आयेगी तो राज करूंगी। जीवन भर कष्ट झेलती रही, अब नाती-पोतों के संग खेलती-खाती घर में पड़ी रहूंगी। बहू-बेटे दिन भर के बाद जब शाम को खेत से वापस लौटेंगे तो उन्हें उलाहना दूंगी—तुम्हारे बेटे बहुत शैतान हैं। दिन भर तंग करते हैं मुझे। मेरा तो खाना-पीना तक मुश्किल हो जाता है।' पर सारे सपने धरे रह गये थे।

अब मौसी भात बनाने में व्यस्त हो गई थी। अरुण के घर से चले जाने का कारण नरेश जानता था फिर भी मौसी से पूछ लिया, 'ऐसा क्या हो गया था मौसी जो अरुण शहर चला गया?'

'होना क्या था बेटा, औरों की तरह सुख-सुविधा की मृगतृष्णा उसे भी खींचकर शहर ले गई। बहू के आते ही यह गांव और घर दोनों उसे कष्टदायक लगने लगे। बार-बार कहता था—मां, इस खेती-किसानी में कुछ धरा नहीं है। इससे तो ठीक से गुजर-बसर भी नहीं हो पाता। कुछ बचने-बचाने की बात तो दूर रही। कभी अकाल तो कभी अतिवृष्टि। कब तक ऊपर वाले की दयादृष्टि पर जीते रहेंगे? बहुत हुआ तो बासी-चटनी खाकर एकाध एकड़ खेती और जोड़ लेंगे। मनसा कहता है, शहर में बहुत रुपये हैं, जितना चाहे बटोर लो। मैं जानती थी, अरुण के मुख से बहू बोल रही थी। बहुत चिरौरी की, बहुत मनायी, पर वह नहीं माना।'

यशोदा मौसी का आरोप बेबुनियाद नहीं था। उसकी बहू सुकारो जैसे इस गांव-घर में न रहने की कसम खाकर ही आई थी। अरुण के मां-बाप से उसकी कभी नहीं बनी। पहले ही दिन से उसने उन दोनों की अवज्ञा शुरू कर दी थी। अपनी मनमानी करती और बात-बात पर लड़ने लगती। न छोटों का लिहाज, न बड़ों का डर। जब भी अरुण बाहर से घर लौटता, वह मां-बाप के विरुद्ध जहर उगलने से कभी न चूकती। रोज सच्चे-झूठे किस्से गढ़ती और अरुण के सामने झूठे आंसू बहाती। अंततः वह मनहूस घड़ी भी आ गई जिससे उसके मां-बाप सदा बचना चाहते थे।

एक दिन अरुण जब दिन भर के काम से थका-हारा घर लौटा तो देखा, सुकारो खाट पर औंधी पड़ी रो रही है। बहुत मनाने पर उसने कहा, 'अब तुम्हारे मां-बाप के साथ इस घर में मैं एक दिन भी नहीं रह सकती। तुम मुझे मायके पहुंचा दो या गांव-घर को छोड़कर कहीं शहर चलो। यहां छोटी-छोटी चीजों के लिए तरसना पड़ता है।' सुनकर वह सकते में आ गया था। एक ओर जन्मदाता मां-बाप थे तो दूसरी ओर नई नवेली दुल्हन, जिसे अग्नि को साक्षी मानकर सदा साथ निभाने का वचन दिया था।

सारी रात मस्तिष्क में कशमकश चलता रहा। किसे छोड़े, किसे न छोड़े? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। आखिर वही हुआ जो अब तक होता आया है। मां-बाप के पासंग में पत्नी का पलड़ा भारी निकला। दूसरे दिन वह अपने पिता के सामने सिर झुकाकर खड़ा हो गया, 'मैं यह गांव छोड़कर जा रहा हूं बाबू जी। रोज-रोज के इस झगड़े-झंझट से तो अच्छा है कि अलग ही रहूं।'

उसके पिता सुनकर स्तब्ध रह गये थे। अरुण से उन्हें ऐसी उम्मीद नहीं थी। कुछ देर खामोश सोचते रहे फिर बोले, 'अपना, अपना ही होता है बेटा। चाहे शहर हो, गांव हो या घर-परिवार। अपने जर-जमीन से उखड़े पौधे की खुशहाली का कोई भरोसा नहीं। अपने लात भी मारें तो अपने ही होते हैं। हम आपस में चाहे जितने लड़ें-झगड़ें, सुख-दुख में साथ तो रहेंगे। परदेश के मेवा मिष्ठान्न से अपने घर की सूखी रोटी अच्छी है। आवेश में आकर कदम उठाना उचित नहीं है। मेरी मानो, यहीं रहो और घर-बार को संभालो। धरती की सेवा करोगे तो भूखों मरने की नौबत कभी नहीं आयेगी।'

'नहीं बाबूजी, पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही तो करते आ रहे हैं हम लोग। दिन-रात खून-पसीना एक करने के बाद मुश्किल से तन ढकने को कपड़े और पेट भरने को अनाज की व्यवस्था कर पाते हैं। मुझे सिर्फ इतना ही नहीं चाहिए। मैं सुखी और संपन्न जीवन जीना चाहता हूं। औरों की तरह मैं भी अपने लिए सुख-सुविधाओं के सारे साधन जुटाऊंगा। मुझे वह सब, आपका यह गांव नहीं दे सकता।'

अरुण के भीतर उपजी महत्त्वाकांक्षा की कल्पना करके उसके पिता चिंतित हो उठे थे। शहरी जीवन की चकाचौंध में अरुण इस तरह खो जायेगा उन्हें विश्वास न होता था। मन मसोसकर उन्होंने उसे जाने की इजाजत दे दी। वे नहीं चाहते थे कि बेटा दुखी मन से घर छोड़े। हृदय कठोर करके बोले, 'जाना ही चाहते हो तो मैं बाधा नहीं बनूंगा बेटा, फिर भी इतना जरूर कहता हूं किसी बात के लिए संकोच मत करना। तकलीफ हो तो बेझिझक लौट आना।' उन्होंने जबरदस्ती उसकी मुट्ठी में कुछ रुपये ठूंस दिये और उसके कंधे थपथपाकर आश्वस्त करते हुए चले गये थे। पिता का यह स्नेहिल स्पर्श पाकर वह किसी असहाय बच्चे की तरह फफककर रो पड़ा था। किन्तु मां के लिए उसका यह निर्णय असह्य था। वह रोती भी थी और चिल्लाती भी थी, 'जा रे, जा, पराये घर से आने वाली कल की छोकरी तेरे लिए सब कुछ हो गई। जोरू के गुलाम! हम तेरे कोई नहीं। तू क्या समझता है, तू नहीं रहेगा तो मर जायेंगे हम लोग?' और जब वह सुकारो को लेकर घर से निकल रहा था, मां दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई थी 'बहू, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं। इस घर को छोड़कर मत जा। यह तेरा ही घर है...।' मां का करुण क्रंदन सुन कठोर हृदय सुकारो भी रो पड़ी थी। फिर भी वे उस घर को छोड़कर चले गये थे।

बाहर अब भी बारिश हो रही थी। मौसी वहीं चटाई बिछाकर भोजन परोसने लगी, 'युगों की तरह लम्बे ये दिन, महीने और साल को गिनते हुए अब थक गई हूं बेटा, ढूंढ लाओ उसे। आंखें बन्द होने से पहले एक बार जी भर देखना चाहती हूं।'

'आखिर कहां जा सकते हैं मौसी ये लोग?' वह भोजन करते हुए सोच में डूब गया था।

'वर्षों पहले पड़ोसी गांव का किशोरी आया था। वही कहता था, वे लोग भोपाल में हैं। उनका एक बेटा भी है जो अक्सर बीमार रहता है। उसकी बातों से लगता था कि वह कुछ छिपा रहा है और वे सुखी नहीं हैं। उसी के हाथ फौरन लौट आने का संदेशा भिजवायी थी, पर आज तक कोई नहीं आया। प्रतीक्षा करते वर्षों बीत गये। न जाने कहां, किस हाल में होंगे? तुम्हारे मौसा की मृत्यु के समय लोग भोपाल से खाली हाथ वापस लौट आये थे। अभागा, बाप को पांच मुट्ठी मिट्टी भी न दे सका।' लालटेन की हलकी रोशनी में मौसी की डबडबायी आंखें साफ दिखाई दे रही थीं।

उसकी थाली में दाल खत्म हो गई थी, मौसी ने पूरी कटोरी भर दाल उसे परोस दी, 'तुम्हारी तरह वह भी उड़द की दाल बड़े चाव से खाता था बेटा। दाल-चावल को ठीक से पकने भी नहीं देता, चूल्हे के पास थाली लेकर बैठ जाता था। उसके जाने के बाद मेरी तो भूख ही मर गई। कभी मन तृप्त नहीं हुआ। अरुण इतना निर्मोही हो जायेगा, मैं नहीं जानती थी।' ऊपर से मौसी खामोश दिखाई देती थी, पर उसका अंतस रोता था।

उसके उठने के पहले ही मौसी बिस्तर लगा चुकी थी। वह उठकर चुपचाप बिस्तर पर लेट गया था, पर उसकी आंखों में नींद नहीं थी। अरुण के गांव से पलायन को लेकर कितने ही प्रश्न उसकी आंखों के आगे मूर्त होकर नाचने लगे। निश्चय ही गांव छोड़कर शहर चले गये बेटों के बिछोह की पीड़ा भोगने वाली यशोदा मौसी अकेली मां नहीं है, न ही अरुण अकेला व्यक्ति है जो शहरी चमक-दमक की मृगमरीचिका में खो गया। क्यों बनती जा रही है यह गांव-गांव की कहानी? क्यों भाग रहे हैं माटी-पुत्र अपनी जर-जमीन को छोड़कर?

कभी अपने सदस्यों की गहमागहमी से गुलजार रहने वाला यह घर आज वीरान पड़ा हुआ है। मकान और मकान मालिक दोनों की स्थिति जर्जर हो गई है। दोनों में से कौन पहले ढह जायेगा, कहना कठिन है। सोच की धारा में बहता हुआ वह कब नींद की आगोश में समा गया, कुछ पता नहीं चला। रात्रि के चौथे पहर किसी महिला की करुण स्वर-लहरी ने उसकी नींद उड़ा दी 'मोर हीरा हेराय गये कचरे मा....।' महा निर्मोही संत कबीर का यह भजन संसार भर की करुणा समेटे उस सूने वातावरण में गूंज रहा था।

'मौसी, इतने सबेरे यह कौन रो रही है? बड़ी पीड़ा है उसकी आवाज में।' वह खाट पर उठ बैठा था।

'रामधन की मां, दुखिया काकी। रामधन उसका इकलौता बेटा था। बचपन में ही शहर जाकर कहीं गुम हो गया। कोई नहीं जानता आज वह दुनिया में है भी कि नहीं। दुखिया काकी को जब बेटे की बहुत याद सताती है तो वह इसी तरह रोने लगती है। लोग कहते हैं, कभी-कभी रामत करता हुआ एक युवा साधु आता है और काकी को समझाता है—तेरा हीरा खोया नहीं है मां, वह तेरे पास है। जिसके लिए तू रोती-कलपती है, वह तो तेरा था ही नहीं।'

काकी जवाब देती है, 'तू एक मां की पीड़ा को नहीं समझ सकता साधु। समझ सकता तो ऐसी बातें न करता। तू ही रह जा यहां मेरा बेटा बनकर। भूल जाऊंगी उसे मैं। इस पर वह साधु कोई जवाब नहीं देता और चुपचाप यहां से चला जाता है। बेटा, डरती हूं कहीं मेरी भी स्थिति दुखिया काफी जैसी तो नहीं हो जायेगी?'

'नहीं मौसी, ऐसा नहीं होगा।' यह जानते हुए भी कि दुखिया काकी और मौसी एक ही धरातल पर खड़े हैं, वह झूठी सांत्वना देने से नहीं चूकता।

लगातार कई दिनों तक भोपाल और फिर इंदौर की झुग्गी-झोपड़ियों में भटकने के बाद बड़ी मुश्किल से वह अरुण का पता-ठिकाना ढूंढ पाया था। इन्हीं झोपड़ियों के बीच एक तंग जगह पर उसने छोटी-सी झोपड़ी बना रखी थी। यद्यपि तीन दिनों से बारिश नहीं हुई थी, फिर भी चारों ओर कीचड़ और गंदगी का साम्राज्य फैला हुआ था। इन दिनों उसने जिस सत्य का साक्षात्कार किया था उसकी कल्पना भी बड़ी भयावह थी। दूर-दूर तक नदी-तालाब का कहीं नामोनिशान नहीं था। लोग यहां-वहां खुदे गड्ढों में एकत्र कीचड़युक्त गंदे पानी में नहाने-धोने को विवश थे। अरुण इस तरह नारकीय जीवन जी रहा होगा, उसने सोचा नहीं था।

जब वह अरुण के घर पहुंचा था शाम हो चुकी थी। अरुण उसी समय काम से वापस लौटकर परछी में बैठा चाय की चुस्की ले रहा था। नरेश को देखकर वह भौचक रह गया। हर्षातिरेक के आवेश में उसने उठकर नरेश को अपनी बांहों में भर लिया। मारे खुशी के उसकी आंखों में आंसू भर आये।

आज उसे लग रहा था जैसे सारा गांव उसकी बांहों में सिमट आया है। इस वक्त उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। उसने झटपट पास पड़ी खाट बिछा दी। नरेश चारों ओर निगाह डालकर खाट पर बैठ गया। खस्ता हाल मकान खुद अपनी जुबानी अपने मालिक की दरिद्रता की कहानी कह रहा था। अरुण की दयनीय स्थिति देख नरेश को उसकी मूर्खता पर क्रोध भी आया था और तरस भी।

'क्या बात है नरेश, तुमने इस तरह चुप्पी क्यों साध ली? घर में सब कुशल तो है?' नरेश की खामोशी से वह विचलित हो उठा था।

'नहीं अरुण, कुछ भी कुशल नहीं है। देख-रेख और मजदूरों के अभाव में तुम्हारी खेती चौपट हो गई है। मकान ढह जाने को आतुर है। पता नहीं, तुम्हें खबर भी है कि नहीं, पांच साल से अधिक हो गये हैं तुम्हारे पिता का स्वर्गवास हुए। और अब मौसी भी पूरी तरह टूट चुकी है। तुम्हारी हालत देख मैं अचंभित हूं। गांव का सीधा-सरल जीवन छोड़कर इस नरक में क्यों रह रहे हो तुम? क्या हो गया है तुम्हें? क्या तुम्हें अपने मां-बाप, गांव-घर की कभी याद नहीं आयी? क्यों कसम खा ली तुमने उस गांव में दोबारा न लौटने की जहां तुम्हारा बचपन बीता। जहां तुम जन्में, पले और बड़े हुए?' उसने बिना किसी लाग-लपेट के सब कुछ साफ-साफ कह दिया था।

पिता की मृत्यु का समाचार सुन वह संज्ञाशून्य-सा हो गया। लगा था जैसे उसकी चेतना लुप्त होती जा रही है। इतना बड़ा अनर्थ हो जायेगा, कहां सोचा था उसने? भीतर बैठा किसी ने धिक्कारा था—'क्या खूब अपना धर्म निभाया तूने? अशक्त बूढ़े मां-बाप को घसिट-घसिट कर जीने के लिए उनके हाल पर छोड़ आये। मां-बाप इसीलिए संतान की कामना करते हैं कि बड़े

होकर बेटे फुर्र से उड़ जायें।' एक अपराध-बोध की पीड़ा से वह भीतर-ही-भीतर छटपटा उठा था।

'तुम कुछ बोलते क्यों नहीं अरुण? निरंतर मृत्युमुख की ओर फिसलते मां-बाप को क्या दिया तुमने? क्या उन्हें तुमसे कोई उम्मीद नहीं करनी चाहिए? जब भी तीज-त्यौहार का दिन आया, मौसी तुम्हारी प्रतीक्षा करती थककर बिसूरने लगती—'इससे तो अच्छा था कि हम निःसंतान होते कम-से-कम ममता की इस मृगतृष्णा में तो न भटकते।' हर बार उसे आशा रही और उसके हिस्से में निराशा परोसकर चली गई, फिर भी उसकी प्रतीक्षा का क्रम कभी नहीं टूटा। आज भी उसकी सूनी आंखें आश लगाये प्रतीक्षा कर रही हैं कि तुम एक न एक दिन जरूर लौटोगे।'

'तुम्हारे पिता यशोदा मौसी को ढाढ़स बंधाते हुए खुद रोने लगते 'क्यों कलपती है अरुण की मां, हमारे भाग्य में संतान-सुख लिखा ही नहीं था। तू व्यर्थ का मोह क्यों करती है? इस संसार में कोई किसी का नहीं है पलक झपकते सारे सम्बन्ध टूट जाने वाले हैं। तू मुझे क्यों नहीं देखती? मैं कभी नहीं रोया उसके लिए। समझ ले, हमारा कोई बेटा था ही नहीं या पैदा होते ही मर गया था।'

अरुण एक अपराधी की भांति खामोश बैठा था। इस बीच उसकी पत्नी दोनों के लिए चाय लेकर वहां खड़ी हो गई थी, 'अब तुम्हीं इन्हें समझाओ भैया। मैं तो कहते-कहते थककर हार गई।' सुकारो वहीं जमीन पर पसर कर बैठ गई थी।

'अरे चुप, नासमझ औरत, तेरी ही जिद के कारण मुझे अपने घर-परिवार सबसे सम्बन्ध तोड़ना पड़ा था।' अरुण पत्नी की बातें सुन आग बबूला हो उठा।

'हां, मैं तो नासमझ थी ही, पर तुम्हारी बुद्धि क्यों पथरा गई थी? दो थप्पड़ मारकर कहते—कुछ भी हो हम घर-बार छोड़कर नहीं जायेंगे। क्या मैं अकेली यहां भाग आती? फिर चूक किससे नहीं होती? बाद में क्या मैंने नहीं कहा था कि चलो पैर छूकर माफी मांग लेते हैं, पर तुम माने? अड़ गये कि जब घर से निकल आया तो वहां दोबारा नहीं लौटूंगा। अब सारा दोष मेरे सिर पर मढ़ते हो।'

सुकारो की बातें सुन अरुण निरुत्तर-सा हो गया था। कुछ देर के लिए वहां एक बोझिल खामोशी पसर गई। वह सोच में डूब गया, कितनी आसानी से उसे दोषी साबित कर सुकारो स्वयं बरी हो गई? दुर्भाग्य! न वह अच्छा बेटा बन सका, न पति, न पिता! बच्चों को भी क्या दिया उसने? बुरी संगति और उद्देश्यहीन बीमार जिन्दगी ही जैसे उनकी नियति बन गई। न दादा-दादी का प्यार मिला न नाना-नानी का। कई बार यह सोचकर वह तड़प उठता कि उसने बच्चों का बचपन और मां-बाप का बुढ़ापा दोनों छीन लिया। उसने यहां आने की भूल न की होती तो शायद उसका बड़ा बेटा सोनू डायरिया का शिकार होकर मौत के मुंह में न चला गया होता

उसके मन में उथल-पुथल मची हुई थी। लाख कोशिशों के बावजूद वह किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पा रहा था। बहुत देर की चुप्पी के बाद वह बोला था, 'सब कुछ तो खत्म हो गया भैया, अब क्या करूंगा गांव जाकर? इस हालत में लौटूंगा तो जगहंसाई अलग होगी—गांव छोड़कर शहर गया था रुपये कमाने, खाली हाथ लौट आया।'

'नहीं अरुण! तुम्हारी जगहंसाई तो तब हुई थी जब तुम गांव से यहां भाग आये थे। तुम्हीं बताओ, यहां आकर सिवा बरबादी के तुम्हें क्या मिला? शहर आकर रामधन गुम हो गया। किशोरी और मनसा का भी कोई पता-ठिकाना नहीं है। कहां खो गये ये लोग? मैं दुखिया काकी को वचन देकर आया हूं कि रामधन की खोज-खबर लेकर ही वापस आऊंगा।'

अरुण शायद इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। उसके चेहरे पर परेशानी के चिह्न उभर आये। वह गूंगे की तरह अपलक उसकी ओर ताकने लगा। बहुत देर तक खामोश रहने के बाद उसने कहा था, 'रामधन अब इस दुनिया में नहीं है। यहां आकर वह तस्करों के चंगुल में फंस गया और एक दिन जब उनके अड्डे पर छापा पड़ा तो वह भागते हुए पुलिस की गोली से मारा गया। मनसा जो रामधन के साथ काम करता था वही साधु के वेश में काकी को सांत्वना देने जाता है और निराश

वापस लौट आता है। मनसा भी हमारी तरह रुपये की चाह में यहां आया और अपराधियों के शिकंजे में जकड़ गया। यहां आने के बाद दोबारा वह अपने गांव वापस नहीं लौट सका। उसके लौटने की प्रतीक्षा करती पत्नी उसके मां-बाप को छोड़कर किसी दूसरे के साथ भाग गई और कुछ साल बाद उसके मां-बाप अनाथ की तरह एक-एक कर मौत के मुंह में समा गये। तब से मनसा हर साल काकी के पास जाता है और इस बहाने शायद खुद को ही झूठी तसल्ली देता है। तुम्हीं बताओ भैया! काकी रामधन के विषय में पूछेगी तो क्या कहूंगा मैं? यही कि वह मर गया अब कभी नहीं लौटेगा।' उसका गला भर आया था।

बाहर सावन का अंधेरा उतर आया था और इस अंधेरे में शहर के बाहर कचरे की ढेर की तरह फैली झुग्गी-झोपड़ियां पूरी तरह डूब गई थीं। मानो यह अंधकार ही उनकी नियति हो।

थोड़ी देर बाद दोनों खाना खाकर सोने चले गये थे। पर उनकी आंखों में नींद नहीं थी। अरुण के भीतर एक द्वन्द्व-सा मचा हुआ था। वह कुछ भी निर्णय नहीं ले पा रहा था, यहीं रहे या फिर गांव लौट जाये। वह सोचते हुए अतीत की यादों में खो गया और स्मृति-पटल पर सारा गांव उभर आया।

वह देख रहा है, खेतों में हल चलाते किसानों की आंखों में तैरता हुआ सपना जहां लहलहाती फसलों की सुनहरी बालियां झूम रही हैं। चोरहा नाले में कल-कल बहता पानी। बाग-बगीचे और खेतों में चारों ओर हरियाली का लहराता अनन्त सागर।

तीजा के लिए मायके आई बेटियों के चेहरे पर बिखरी खुशियां और होठों से झरती खिलखिल हंसी। बरदी के पीछे बांसुरी बजाते धनवा राऊत की सुरीली तान सुनाई दे रही है। गांव के चौपाल में रमेशर काका पंडवानी गा रहे हैं और महाबली भीम अत्याचारी दुर्योधन की जंघा तोड़ने के लिए उठ खड़ा हुआ है। हर साल दशहरे पर मरने वाला रावण फिर हटवारा में सीना तानकर खड़ा हो गया है। गांव का सारा दृश्य चलचित्र की भांति उसकी आंखों में उभरकर विलीन होता जा रहा है।

खेत-खलिहान में इकट्ठी धान की ढेरी धीरे-धीरे घर की कोठियों में चली गई है और अब रोज रात को होली के नगाड़े सुनाई देने लगे हैं। अमराई में बौरों में लदे आम के पेड़ों पर मधुरस घोलती कोयल की कूक चारों ओर गूंजने लगी है। इधर गांव में बेटे-बेटियों की मंगनी-बरनी का सिलसिला शुरू हो गया है। नवयुवक देर रात तक नगाड़े बजा-बजाकर जैसे अपने जवान हो जाने का ढिंढोरा पीट रहे हैं।

उसे आज भी याद है, जैसे बीते कल की बात हो। जब चौपाल में नगाड़े बहुत बजते थे और रजउ दादा को नींद आती थी तो वे चौपाल में जाकर बैठ जाते थे, 'धीरे बजाओ बेटे, धीरे बजाओ। नगाड़े फूट जायेंगे। अरे, तुम लोगों को नींद नहीं आती तो कम से कम हम बूढ़ों का तो कुछ ख्याल करो। जब तुम्हारी उम्र के थे तो हमने भी बहुत नगाड़े बजाये हैं।' लड़के खिलखिलाकर हंसने लगते और दादा के हाथों में डंडा देकर नगाड़े उनके सामने धर देते। और एक बार फिर नगाड़े धिड़कने लगते। दादा हाथ रोककर अलाप देते—'आउ सुन ले मोर...' बिस्तर में सोया अरुण जोर-जोर से हंसने लगा। उसकी हंसी सुन नींद में डूबा नरेश अचानक जाग उठा।

'क्या बात है अरुण, तुम इस तरह एकाएक क्यों हंस रहे हो?' नरेश अचम्भित था।

'कुछ नहीं भैया, बचपन की एक घटना याद आ गई थी। नरेश, क्या अब भी फागुन में गांव के चौपाल पर नगाड़े बजते हैं?'

'हां, मगर क्यों?' अरुण के मन में तरंगित उल्लास को अंधेरे में भी उसने महसूस किया था।

'मन होता है, एक बार फिर अपने गांव के चौपाल में जी भरकर नगाड़े बजाऊं।' अरुण एक दीर्घ निःश्वास लेकर चुप हो गया था।

शायद उसके भीतर जमी कुण्ठा की बर्फ पिघल रही थी। उसे लगा था, बाहर आसमान का अंधेरा छंट गया है और सबेरे का सूरज उसके गांव की अमराई की फुनगियों से होकर निकल रहा है। ❑

प्रवचन

शरीर का अहंकार मिथ्या है

(पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा कबीर मंदिर प्रीतमनगर, इलाहाबाद में रविवारीय सत्संग में दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति— श्री रामकेश्वर जी)

आदरणीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! हम लोग जीते हैं, खाते हैं और अपनी जिंदगी बिताते हैं। इसी में हम समझते हैं कि हमारी जिंदगी की सार्थकता है लेकिन यह जिंदगी की सार्थकता नहीं है। फिर हमें यह विचार करना चाहिए कि हमारी जिंदगी की सार्थकता कहां है। अगर हमारे द्वारा आत्मकल्याण और लोककल्याण का काम हो रहा है तब तो जिंदगी है और यह यदि नहीं हो रहा है तब हमारी जिंदगी क्या है। तब तो मानो टट्टी-पेशाब की यह टोकरी ढोना है। यह शरीर टट्टी-पेशाब की एक टोकरी ही तो है, जिसको हम ढो रहे हैं। इस टोकरी की सार्थकता तब है जब हम आत्मकल्याण करें और लोककल्याण करें। अपना कल्याण करें तथा दूसरे के लिए भी कुछ करें। चाहे वह भौतिक, वाचिक और आध्यात्मिक कुछ भी हो दूसरों के लिए हम कुछ करें क्योंकि अपने लिए तथा दूसरों के लिए कुछ करनेवाले की ही जिंदगी सार्थक है। कबीर साहेब कहते हैं—

चलहु का टेढ़ो टेढ़ो टेढ़ो।
दशहूँ द्वार नरक भरि बूड़े, तूँ गंधी को बेड़ो।
फूटै नैन हृदय नहिं सूझे, मति एकौ नहिं जानी।
काम क्रोध तृष्णा के माते, बूड़ि मूये बिनु पानी।
जो जारे तन भस्म होय धुरि, गाड़े किरमिटी खाई।
सीकर श्वान काग का भोजन, तन की इहै बड़ाई।
चेति न देखु मुग्ध नर बौरे, तोहि ते काल न दूरी।
कोटिन यतन करो यह तन की, अंत अवस्था धूरी।
बालू के घरवा में बैठे, चेतत नाहिं अयाना।
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़े बहुत सयाना।

साहेब कहते हैं कि भाई, तुम इस अपने शरीर की सुन्दरता पर और अपनी जवानी पर क्या टेढ़े-टेढ़े होकर चलते हो। अरे, तुम्हारी जवानी तो चार दिन की है। लोग चार दिन की इस जवानी पर इतरा जाते हैं और इस जवानी का कच्चा कोई पांच-दस वर्ष में ही बैठ जाता है। खास जवानी का समय तो अठारह से अट्ठाईस की उम्र तक रहता है और जहां तीस भये कि खीस निकलने लगती है। अवध क्षेत्र में लोग कहावत कहते हैं—

ब्याह की चाह उठे मन माहिं,
तो पन्द्रह बीस पचीस जू कीजै।
तीस भये तब खीस भये,
अरु चालीस पचास में नाम न लीजै।
काम का वेग उठे मन में,
करि ज्ञान हृदय मन माहिं रहीजै।
साठ बरस में मन ललचाय,
तो काढ़ि के जूता कपार पे दीजै॥

इस कहावत का अर्थ बहुत सरल है। कहने की बात है कि इस चार-छः वर्ष की जवानी पर इतराओ न। टेढ़े-टेढ़े मत चलो। खास जवानी अठारह से अट्ठाईस वर्ष तक ही रहती है बस, और उसके बाद तो जवानी की सारी रौनक थोड़े ही समय में झड़ जाती है।

साहेब मानो थप्पड़ मारकर समझा रहे हैं कि 'चलहु का टेढ़ो टेढ़ो टेढ़ो।' क्या टेढ़े होकर चल रहे हो। अरे, शरीर पाये हो, जवानी पाये हो, अच्छा स्वास्थ्य पाये हो तो इतराओ न किंतु आत्मकल्याण करो और दूसरों का भी जितना बन सके कल्याण करो। तुम्हारे पास जो भी भौतिक वस्तुएं हों, जल-भोजन, वस्त्र और द्रव्य उनसे तथा वे भी न हों तो सद्वाणी से ही दूसरों का कल्याण करो और अपनी आत्मा का कल्याण करो। यही जिंदगी की सार्थकता है। टेढ़े होकर चलने तथा दूसरों पर आंख गुरेरने के लिए शरीर नहीं मिला है। आंख है तो विश्वरूप भगवान का दर्शन करो। विश्वरूप भगवान को समझो।

देखो, यहां इस सभा में विश्वरूप भगवान बैठा है। विश्व के जितने नर-नारी हैं, जीव हैं, यही विश्वरूप भगवान हैं। ऋग्वेद में कहा गया है—

सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

ऋषि कहता है कि हजारों हाथ-पैर वाला परमात्मा यही जनसमाज है। एक-एक आत्मा व्यष्टि है और सबकी सामूहिकता समष्टि है। देखो, यहां इस सभा में इस जनसमूह के रूप में वही परमात्मा बैठा है। हमारे नेत्र इसी परमात्मा के दर्शन के लिए हैं, अहंकारपूर्वक किसी पर आंख गुरेरने के लिए नहीं हैं।

हाथ से कुसेवा नहीं होनी चाहिए। हाथ से किसी का अहित नहीं करना चाहिए। हाथ से दूसरों की सेवा करना चाहिए। पैरों से गलत जगह नहीं किंतु अच्छी जगह जाना चाहिए। हम अपने शरीर का दुरुपयोग करते हैं जिसका परिणाम विष हो जाता है। जीवन की सार्थकता केवल आत्मकल्याण और लोककल्याण में है और लोक तो बहुत विशाल है। सोचें, हमारे द्वारा कितना लोककल्याण हो पायेगा। क्या हम इस विस्तृत-विशाल लोक का कल्याण कर सकते हैं? नहीं कर सकते हैं क्योंकि हम एक तुच्छ सामान्य जीव हैं लेकिन लोककल्याण भी करना है। हमसे जो बन सके दूसरों की सहायता करें, दूसरों के सामने विघ्न न डालें। किसी के मार्ग में रोड़े न अटकायें। किसी को ठगें न, धोखा न दें और रत्तीभर ही हो सके दूसरों की सेवा करें। ऋषियों ने भी यही कहा है। ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि बध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

ऋषि कहते हैं—"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता" जो असावधान है वह व्यर्थ का खाता है। 'अप्रचेता' असावधान आदमी ही व्यर्थ का खाता है। 'सत्यं ब्रवीमि बध इत् स तस्य' ऋषि कहते हैं कि मैं सत्य कह रहा हूं कि असावधान व्यक्ति अधिक खा-खाकर अपनी आत्महत्या कर रहा है। 'नार्यमणं पुष्यति' और न वह सेवा करता है और न आर्य की ही सेवा करता है।

'आर्य' का मतलब है पवित्र आत्मा। 'आर्य' के दो अर्थ हैं—एक, पवित्र आत्मा और दूसरा, एक परम्परा के लोग। जो पवित्र है वही असली आर्य है। चमार कहे जाने वाले का भी बच्चा अगर पवित्र है तो आर्य ही है। इसी प्रकार मुसलमान का, ईसाई का, ब्राह्मण का, कुर्मी का, मुराव का या चाहे जिस किसी का बच्चा कह लीजिए, वह मानव है और पवित्र है तो आर्य है क्योंकि ऋषियों ने ही कहा है—"कृतेन हि भवेदार्यो न धनेन न च विद्यया" आदमी अपने पवित्र आचरण से आर्य होता है, धन और विद्या से नहीं। जो असावधान है वह व्यर्थ का खाकर न तो आर्य की सेवा करता है यानी न तो पवित्रात्माओं की सेवा करता है और न सखा-मित्रों की ही सेवा करता है। वह तो 'केवलाघो भवति केवलादी' केवलादी का मतलब है केवल अपने लिए खानेवाला और वह 'भवति केवलाघो' केवल पाप खाता है। जो केवल अपना पेट समझता है, दूसरे का पेट नहीं समझता, वह केवल पाप खाता है।

जगत का अपने ऊपर बड़ा उपकार है। इसलिए हमारे द्वारा भी जगत का कुछ काम होना चाहिए। हमने जिन-जिनके साहित्य पढ़े वे कितने कीमती होंगे। कहां-कहां उनका प्रचार हुआ होगा, प्रकाश हुआ होगा और किन-किन लोगों के द्वारा वे पुस्तकें आयीं होंगी। इसी प्रकार भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में देखें, सभी जगह दूसरे लोगों का हमारे ऊपर बड़ा उपकार है। हमारा कल्याण जिन-जिन साधनों से हुआ है, उसमें हजारों-लाखों का ही नहीं किंतु करोड़ों लोगों का सहयोग रहा है। इसलिए हम भी दूसरों की सेवा में कुछ न कुछ लगें। इस प्रकार आत्मकल्याण और लोककल्याण का कार्य जो करता है उसी का जीवन सार्थक है।

साहेब कहते हैं कि तू तो गंदगी का मानो जहाज है—"दसहूँ द्वार नरक भरि बूड़े, तू गंधी को बेड़ो।" तू क्यों टेढ़े-टेढ़े होकर चलता है! अपने जिस शरीर पर इतराता फिरता है उसके दस दरवाजे हैं और वे दसों

दरवाजे "नरक भरि बूड़े" नरक से भरकर डूबे हैं। दो आंख, दो कान, दो नाक, ये छः दरवाजे हुए। मुख सातवां हुआ, टट्टी-पेशाब के द्वार नौ हुए और दसवां दरवाजा कपाल कुहर में माना है जहां बच्चों में लप-लप करता है। उसमें भी एक छेद माना गया है और योग साधना में उसका बड़ा महत्त्व माना गया है। खुले रूप में नौ को और सूक्ष्म रूप में एक को मिलाकर दस दरवाजे माने गये हैं। और वैसे तो असंख्य दरवाजे इस शरीर में हैं। दो कणों की संधि में दरवाजा है ही। ये दसों दरवाजे गंदगी से भरे हैं। पूरा शरीर ही नरक से डूबा है। साहेब कहते हैं कि "तू गंधी को बेड़ो' तू तो गंदगी का जहाज है। तू अपने को मानता क्या है।

शरीर गंदगी का जहाज ही है। विवेकवान इसको एक फोड़ा के समान समझते हैं। जैसे फोड़े में मलहम लगाकर उसपर पट्टी बांधी जाती है वैसे इस शरीररूपी फोड़े को भोजन-पानी देकर मानो मलहम लगाया जाता है और कपड़ा पहनाकर मानो पट्टी बांधी जाती है। यह विवेक के स्तर की और विनम्रता की बात है। शरीराभिमानी आदमी अहंकारी होता है। वह शरीर का अहंकार करता है लेकिन यह शरीर तो विनम्रतापूर्वक साधना करने के लिए है। यह शरीर आत्मकल्याण और दूसरे की सेवा करने के लिए है, अहंकार करने के लिए नहीं है।

साहेब कहते हैं—"दसहूँ द्वार नरक भरि बूड़े, तू गंधी को बेड़ो।" यह शरीर दुर्गन्धी का आगार है, दुर्गन्धी का घर है। यह शरीर मानो एक मकान है जिसमें हड्डी की दीवार है, टट्टी-पेशाब आदि गंदे पदार्थ इसमें भरे हैं। यह मांस से छाया है और चाम से मढ़ा है। अंदर में आग का ताप है। अब ऐसे किसी घर में आपको या हमको बैठा दिया जाये तो कैसी दुर्दशा होगी। यह शरीर ऐसा ही घर है लेकिन इसको हम बड़ा प्रिय मानते हैं। मछुआरा मछली को बड़ा प्रिय मानते हैं और उसको वे बड़ा सुगंधित मानते हैं।

एक समय की घटना है। कुछ मछुआरे थे जो नदी में मछली मार रहे थे। उसी बीच जोर की आंधी आ गयी। सभी मछुआरे नदी में से निकलकर पास में एक बाग में चले गये। बाग में एक कमरा था जिसमें खूब फूल इकट्ठे किये गये थे और उनसे खूब सुगन्धी फैल रही थी। उन फूलों की सुगंधी जब मछुआरों की नाक में गयी तो वे बेचैन होकर कहने लगे—"अरे, अरे! यहां तो फूलों की दुर्गन्धी से नाक फटी जा रही है।" जिन कपड़ों से वे सब मारी गयी मछलियों को ढकते थे उन्हीं कपड़ों को अपनी-अपनी नाक पर लगाकर नाक को ढक लिये। फूल की सुगंधी उनको मारे डाल रही थी लेकिन मछली में उनको दुर्गन्धी नहीं सुगंधी आ रही थी।

हम लोग भी देहाभिमानी हो गये हैं। इसीलिए इस देह की गंदगी को प्रिय मानते हैं। इस देह से जो काम करना चाहिए, वह काम नहीं कर पाते हैं। इस शरीर का अच्छा उपयोग हो तो यह शरीर शरीर नहीं मणिरत्न है, पारसमणि है, साधनधाम और मोक्षधाम है लेकिन इसको यदि विषय-भोगों में लगाये तब यह कूड़ा-कबाड़ और नरक का द्वार बन जाता है। तब यह हमें बंधन देता है, दुख देता है। इसलिए शरीर वही है लेकिन इसके सदुपयोग-दुरुपयोग से बहुत बड़ा अन्तर हो जाता है। सदुपयोग करने से कल्याण होता है और दुरुपयोग करने से अकल्याण होता है।

साहेब कहते हैं कि तू शरीराभिमानी होकर दुर्गन्धी का जहाज हो गया है। तू इस शरीर को ही अपना स्वरूप मानता है और इसे बड़ा प्रिय मानता है। इससे तू भोगसुख चाहता है तो यह बहुत बड़ा अनर्थ है। तुम इससे भोग न चाहो किंतु आत्मकल्याण और परकल्याण का कार्य करो।

"फूटे नैन हृदय नहिं सूझै, मति एकौ नहिं जानी।" देखिये, यह कितना तेज कथन है। यही कबीर साहेब की विशेषता है। उनका हृदय इतना तेज था कि वे जो भी कहते थे बड़ा तेज होता था। जहां वे पाखण्ड का खण्डन करते हैं वहां उनकी बात बड़ी तेज होती है, जहां वैराग्य की बात करते हैं वहां बहुत तेज कहते हैं। उनका हृदय ही इतना तेज था कि वे जो भी कहते थे आर-पार

कहते थे। साहेब कहते हैं कि तेरे नेत्र फूटे हैं और 'हृदय नहिं सूझै' तेरे हृदय के नेत्र भी फूट गये है। हमारे चार नेत्र हैं—बाहर चाम के दो और भीतर विवेक-विचार के दो। साहेब कहते हैं कि बाहर के तुम्हारे दोनों नेत्र मानो फूटे हैं और भीतर के दोनों नेत्र भी फूटे ही हैं। हम देखते हैं कि लोग मरते हैं लेकिन हमें अपने पर ध्यान कहां होता है। हम देखते हुए भी मानो अनदेखा ही रहते हैं। हमारे अन्दर विवेक-विचार नहीं आता है।

''मति एकौ नहिं जानी'' साहेब कहते हैं कि बुद्धि का एक भी विवेक तुम्हारे अन्दर में नहीं आता है। 'काम-क्रोध तृष्णा के माते, बूड़ि मुये बिनु पानी' तुम तो काम, क्रोध और तृष्णा में माते हो और बिना पानी के ही डूब रहे हो। काम धुरी है और क्रोध तथा तृष्णा उसके चारों तरफ नाचते रहते हैं। काम यदि सफल हो जाये तो तृष्णा बढ़ जाती है और असफल हो जाये तो क्रोध भभक उठता है। इसलिए क्रोध और तृष्णा अपने आप में कुछ नहीं हैं, काम ही मुख्य है।

''तात तीनि ये प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ' काम, क्रोध और लोभ ये तीनों प्रबल खल हैं लेकिन क्रोध और लोभ तो काम ही से बनते हैं। मूल काम है। हमारी कामना जहां जगी कि मन में इच्छा हुई। इच्छा की पूर्ति में जहां विघ्न पड़ा कि क्रोध भड़का और इच्छा की पूर्ति यदि सफल हुई तो तृष्णा बढ़ी। यह तृष्णा ऐसी राक्षसी है कि हर जगह अपना पैर फैलाती है। इस तृष्णा में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों उलझ जाते हैं। अज्ञानी तो तृष्णा में उलझता ही है, सावधान न रहने पर ज्ञानी भी उलझता है। शास्त्रज्ञान कुछ काम नहीं कर पाता क्योंकि चरित्र नहीं होता है, आचरण नहीं होता है। चरित्र और आचरण के बिना ज्ञान भला कर ही क्या सकता है! इसलिए चरित्र और आचरण से हीन शास्त्रज्ञानी तृष्णा से बच नहीं पाता।

साहेब कहते हैं कि काम, क्रोध और तृष्णा में लोग जीवन भर माते रहते हैं। काम पहले आता है फिर पीछे से क्रोध और तृष्णा आते हैं। आदमी चालीस वर्ष से जितना ऊपर होता जाता है, उतनी तृष्णा उसमें बढ़ती जाती है। लोग अपना अनुभव बताते हैं। कोई पचपन का होता है तो कोई साठ वर्ष का होता है। जब वे मिलते हैं तो कहते हैं—''महाराज, तृष्णा बहुत बढ़ गयी है। मन बहुत चंचल हो गया है और वह बहुत चाहता है कि 'यह' हो जाये, 'वह' हो जाये।'' कितने लोग हैं जिनके जवान-जवान बच्चे हैं जो घर का सारा काम-धाम देखते हैं। उन लोगों के ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं होती है। फिर भी उनको तृष्णा के कारण निरन्तर सिरदर्द होता रहता है कि 'यह' न हुआ, 'वह' न हुआ।

साधु-महात्माओं में भी कितने लोगों में ज्ञान-प्रचार की तृष्णा हो जाती है। वे सोचते हैं कि इतना-इतना प्रचार कर डालूं और दुनिया को बिलकुल बदलकर रख दूं। इस संसार में कितने-कितने महान प्रचारक आये और चले गये लेकिन यह संसार ऐसा है कि घूम-घुमाकर करीब-करीब वैसे ही रहता है। यहां मतलब यह नहीं है कि उन महापुरुषों का श्रम बेकार गया है। कहने का मतलब है कि जिसको यह भ्रम सवार हो जाता है कि मैं दुनिया को बदल दूंगा, वह गलत है। अपना काम करो, अपना कल्याण करो और दूसरों को सहयोग दो। दुनिया को कोई बदल नहीं पाया है।

यह दुनिया कुत्ते की पूंछ है। कुत्ते की पूंछ को पकड़कर सीधी करो तो सीधी रहेगी और छोड़ दो तो फिर टेढ़ी की टेढ़ी। यह संसार भी वैसे ही है। चाहे जितना कहो, जितना सुनो, यह संसार भी घूम-घुमाकर अपने हिसाब से ही रहता है। कोई सोचे कि वह इस दुनिया को सुधार देगा, यह उसका पागलपन ही है। अपने को सुधार लें बस, यदि अपने को सुधार लें तो समझ लो कि समाज का एक अंग सुधर गया। लोग अपने को तो सुधारना चाहते नहीं, दूसरों को सुधारना चाहते हैं।

चार नमाजी नमाज पढ़ रहे थे। नमाज पढ़ते-पढ़ते एक नमाजी ने बोल दिया। दूसरे नमाजी ने कहा—'यार, नमाज पढ़ते समय बोला नहीं जाता है।' तीसरे नमाजी ने कहा—'यार, तुम भी तो बोल दिये।' तो चौथा नमाजी जो अलग बैठा था उसने कहा—'महाशय, आप

भी तो बोल दिये।' तो चारों बोल दिये। कहने का मतलब है कि हम आपको उपदेश करते हैं, आप हमें उपदेश करते हैं और ग्रहण न आप करते हैं और हम करते हैं। तब उपदेश का क्या मतलब हुआ किंतु यदि उपदेश न देकर हम ग्रहण करना, आचरण करना शुरू कर दें तो बस उपदेश हो गया।

मैं जब स्वयं ग्रहण करूंगा, स्वयं आचरण करूंगा तब मेरा आचरण ही दूसरे के लिए उपदेश होगा। उसके बाद जो मौखिक उपदेश किया जाता है वह भी ठीक है। ज्ञानचर्चा करना गलत नहीं है। सत्संग चर्चा की सदैव प्रशंसा की जानी चाहिए। लेकिन मन में प्रचार करने की तृष्णा हो जाये तो यही महाबंधन है।

"बेलि एक त्रिभुवन लपटानी, बाँधे ते छूटै नहिं ज्ञानी।" साहेब कहते हैं कि ऐषणा की, तृष्णा की एक लता है जो पूरे त्रिभुवन में लिपटी है और उसमें अज्ञानी तो बंधे ही हैं ज्ञानी भी बंधे हैं। वे भी छूट नहीं रहे हैं। यह ऐषणा, यह तृष्णा जो मन में हो जाती है कि दुनिया भर को मैं जगा दूंगा, महाबंधन है और इसीलिए कितने धर्मगुरु जो धर्मप्रचार में थोड़ा सफल होते हैं तो अपने को घोषित कर देते हैं कि 'मैं ईश्वर का अवतार हूं।'

कोई-कोई तो यह भी घोषित कर देता है कि मैं कबीर का अवतार हूं। कोई-कोई अपने को किसी 'महापुरुष' का अवतार घोषित कर देता है और कहने लगता है कि "मैं" अवतार हूं इसलिए मेरी बात मानो। वे और भी कुछ का कुछ कहने लगते हैं लेकिन यह सब सनक है और इस सनक से परेशानी के सिवा और कुछ नहीं होता है। इसमें न तो आत्मकल्याण है और न लोककल्याण। इसलिए यह प्रचार की तृष्णा शांत होनी चाहिए।

जो लोककल्याण की भावना है, वह संतुलित रूप में ही होनी चाहिए। लेकिन यह तृष्णा इतनी विकट है कि हर जगह अपनी जगह बनाती है। हर जगह यह तृष्णा काम करती है और परेशान करती है। इस तृष्णा पर जो नियंत्रण करता है उसी की भवव्याधि मिटती है। इसलिए इस तृष्णा को अवश्य जीतना चाहिए। तृष्णा ही जीव को भटकाती है। तृष्णा से आदमी का दिमाग खराब होने के सिवाय और कुछ नहीं होगा। जो आपकी शक्ति हो उसी के अंदर सोचो। लोग इतना ज्यादा सोचते हैं कि जितनी शक्ति नहीं रहती है। इसीलिए उलझन बढ़ती है।

जब पास में दस रुपये होते हैं और बाजार जाते हैं तो हजार रुपये के सामान पर मन चलाने लगते हैं। घंटा-दो घंटा हजार रुपये के सामान पर मन चलाकर अंत में दस रुपये का सौदा लेकर घर चले आते हैं तो फायदा क्या हुआ। कोई विवेकवान व्यक्ति हो तो उसका मन केवल दस रुपये के अन्दर के सौदा में ही रहता है। वह ज्यादा के लिए नहीं सोचता है। जो अपनी इच्छाओं को वश में नहीं रख सकता, जो अपनी तृष्णा को शांत नहीं कर सकता, जो अपनी कामनाओं पर कब्जा नहीं कर सकता वह सुखी नहीं हो सकता। मैं केवल साधु-संत की बात नहीं करता हूं किंतु मनुष्य मात्र की बात करता हूं। सबके लिए यह बात जरूरी है कि वह अपनी इच्छाओं पर विचारपूर्वक नियंत्रण रखे, लोलुप न बने। मान लीजिए आप किसी के घर गये। वहां बहुत बढ़िया फर्नीचर देखे तो अब आपके भी मन में हो कि ऐसा ही फर्नीचर मेरे भी घर हो तो यह बेकार की बात है। इस विचार से दिमाग केवल खराब होगा। फर्नीचर से क्या हो जायेगा। ज्यादा फर्नीचर रहेगा तो चलने-फिरने में हाथ-पैर में ठोकर लगकर चोट लग सकती है। दूसरी बात कि बहुत फर्नीचर रखो तो कमरे में झाड़ू-पोंछा लगाने में भी असुविधा होती है। तब क्या फायदा है फर्नीचर रखने में और फर्नीचर यदि न रहे तो क्या हर्ज है। मन में ललक रहती है कि सोफासेट हमारे हो जाये। अरे, न सोफासेट रहे तो दरी बिछाकर बैठ जाओ, चटाई बिछाकर बैठ जाओ।

सोफासेट के लिए गुंजाइश हो तो ले लो। आदमी ही सोफा खरीदता और रखता है। कहने का तात्पर्य है कि मन में किसी चीज के लिए ललक न रहे। मन सदैव संतुलित रहे। किसी चीज को देखकर ललचायें न क्योंकि ललचाना ही दरिद्रता है। पैसे से कौन धनी हुआ है। देखा जाता है कि जितने पैसे वाले हैं उनमें

अधिकाधिक महादरिद्र हैं। दिखाई तो नहीं देता है कि कोई पैसा वाला दरिद्र हो और असंतुष्ट हो लेकिन कोई बिरला ही होगा जो पैसा से संतुष्ट होगा। पैसे वालों के मन में झांककर देखो तो पता चलेगा कि उनका मन पैसे से तृप्त नहीं है। वे और-और पैसे चाहते हैं। तृप्ति ही नहीं है जबकि तृप्ति ही सम्पन्नता है, संतोष ही सम्पन्नता है, धनाढ्यता है।

साहेब बहुत बड़ी मनोवैज्ञानिक बात कहते हैं कि काम धुरी है, इच्छा धुरी है और इसी इच्छा के इर्द-गिर्द इंसान नाचता है। यही इच्छा उसे भवाटवी में भटका रही है। जो इच्छा पर संयम करे वही विवेकवान है, जो इच्छा को जीतता है वही विवेकवान है और वही सुखी रहता है। जिसने इच्छा को जीत लिया, काम को जीत लिया, उसको क्रोध नहीं आता है। जब काम ही नहीं है तो क्रोध कहां से आयेगा। जिसके काम नहीं है, तृष्णा नहीं है उसकी भवव्याधि भी खत्म हो गयी।

हमारा मन ही भवव्याधि है। हमारा यही तरंगायित मन, जो हमें एकदम धुआं के धौरहरे पर बैठाता रहता है, विकट भवसागर है। इसको छोड़कर भवसागर और कहां है। धुआं का धौरहरा मिट जाये यानी धुआं का भवन, धुआं का नगर मिट जाये, मन का दिवास्वप्न स्थिर हो जाये फिर तो संसार-सागर ही सूख गया। मन की शांति, मन की निश्चलता ही संसार-सागर का सूखना है। मन की शांति ही भवसागर से पार होने की दशा है।

संसार-सागर की और उससे पार होने की चर्चा लोग खूब करते हैं लेकिन इसका अर्थ ठीक से नहीं जानते हैं। भवसागर कोई ऐसा बाहरी जलाशय नहीं है जिसमें बाहर का जहाज काम करता हो। भवसागर तो हमारे भीतर में चंचल मन है और इसमें भीतर विवेक ज्ञान का जहाज चाहिए तभी काम बनेगा।

"काम क्रोध तृष्णा के माते, बूड़ि मूये बिनु पानी" साहेब कहते हैं कि लोग बिना पानी के डूबते हैं। पानी में तो कभी कोई डूबता है लेकिन हर आदमी बिना पानी के डूब रहा है। बैठे हैं खाट पर लेकिन मन चला गया वासनाओं की नाली में तो डूब गये। पानी तो वहां नहीं है लेकिन डूब गये। इसी प्रकार मन क्रोध में चला गया, ईर्ष्या में चला गया तो मानो डूब गये, पानी तो नहीं है लेकिन डूब गये। इस प्रकार क्षण-क्षण लोग डूब रहे हैं। इस बात को ठीक से जानना हो तो एक नोटबुक अपने पास रखो और सुबह से शाम तक मन में जो संकल्प आये, उसे उसमें नोट करो कि कब-कब मन डूब रहा है। इस प्रकार जब तक जागो, जब से नींद खुले तब से और जब सोने जाओ तब तक पता नहीं कितनी बार डूबे होंगे। उस नोटबुक को आप किसी को दिखा नहीं पाओगे। उसे पढ़कर आप खुद परेशान हो जाओगे।

मलिन विचारयुक्त मन बिना पानी का समुद्र है और इसी समुद्र में आदमी बारम्बार डूबता है। "सलिल धार नदिया बहै, पाँव कहाँ ठहराय" सबके अन्दर गंदी विचारधारा की नदी बहती है और यदि विवेक-विचार नहीं है तो ठहराव नहीं हो पाता और आदमी उसमें बह जाता है। इसलिए अपने अंदर का जो बिना पानी का सागर है, यह सूखना चाहिए।

"जो जारे तन भस्म होय धुरि, गाड़े किरमिटी खाई। सीकर श्वान काग का भोजन, तन की इहै बड़ाई।" शरीर जब छूट जाता है तब इसकी क्या दशा होती है। तब यह शरीर जला दिया जाता है और यह जलकर राख हो जाता है। गाड़ दिया जाता है तब इसको कीड़े खा लेते हैं, यह सड़कर मिट्टी हो जाता है। यह शरीर बाहर पड़ा रहता है तब सीकर, श्वान, कौआ और चील-गिद्ध का भोजन हो जाता है। 'सीकर श्वान' का मतलब है सियार और कुत्ते। साहेब कहते हैं कि तुम्हारा शरीर अंत में राख हो जायेगा या कीड़े-मिट्टी इसे खा लेंगे या कुत्ते-सियार और चील-गिद्ध आदि का भोजन हो जायेगा, और इसका क्या होता है। यही इस शरीर की विशेषता है। साहेब कितनी मार्मिक बात यहां कह देते हैं, इसपर ध्यान देने की जरूरत है। यह बात कहकर साहेब हमारे अहंकार को तोड़ना चाहते हैं

जिसके मन में शरीर को लेकर अहंकार हो वह विचार करे कि उसके शरीर की विशेषता क्या है। राख

होना, कीड़े-मिट्टी के द्वारा खा लिया जाना या चील-गिद्ध तथा कुत्ते-सियार के द्वारा भोजन कर लिया जाना, यही तो इस शरीर की विशेषता है। लेकिन जब इस शरीर से भजन किया जाता है तब इसके महत्त्व का फिर क्या पूछना ! इस शरीर से यदि भजन-साधना हो रहा है, आत्मकल्याण और लोककल्याण हो रहा है, अपनी आत्मा का उद्धार और दूसरों की सेवा हो रही है तब इस शरीर की सार्थकता है। साधना-भजन और स्व-पर का कल्याण हो रहा है तब भी तो अंत में इस शरीर को राख ही होना है लेकिन तब इस शरीर की सार्थकता हो जाती है।

ऋग्वेद में आया है कि भूख ऐसी है कि इससे आदमी भयभीत हो जाता है कि अन्न यदि न मिलेगा तो मैं मर जाऊंगा। लेकिन अन्न खाने के बाद भी मृत्यु उसका साथ नहीं छोड़ती। यह बात ऋग्वेद के दशम मंडल के एक सौ सत्तरहवें सूक्त में आयी है। ऋग्वेद के ऋषि उस मंत्र में बताते हैं कि आदमी सोचता है कि अन्न यदि न मिलेगा तो भूखों मर जाऊंगा लेकिन अन्न खाकर भी उसे मृत्यु का भय बना रहता है। इसलिए निर्भयता प्राप्ति के लिए अन्न पूरा समर्थ नहीं है। उसके लिए तो आत्मज्ञान ही पूर्ण समर्थ है। आत्मज्ञान होगा तब निर्भयता होगी। आत्मसाक्षात्कार होगा तब निर्भयता होगी।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस शरीर का अहंकार करना गलत है। इसकी अंतिम स्थिति है—राख होना, कीड़े-मिट्टी के द्वारा खा लिया जाना या चील-गिद्ध के द्वारा खा लिया जाना। इस शरीर की ये ही तीन दशायें हैं। हम रात-दिन देखते हैं कि हमारे इष्ट-मित्रों की यही दशा हो रही है तो हमारी भी यही दशा होगी लेकिन हम प्रमादी बने हुए हैं इसलिए समझ नहीं पाते हैं। अचानक लोग यहां से चल बसते हैं, बूढ़े तो जाते ही हैं, जवान-जवान लोग जाते हैं और बच्चे भी जाते हैं। यहां पर कोई इत्मीनान नहीं किया जा सकता कि कब तक यह शरीर रहेगा। इसलिए अपने शरीर का अहंकार छोड़कर आत्मकल्याण और पर-सेवा का काम करो।

"चेति न देखु मुग्ध न बौरे, तोहि ते काल न दूरी" साहेब कहते हैं कि ऐ विमोहित पागल मनुष्य! चेत करके तुम देखो कि काल तेरे से दूर नहीं है। जन्म लेते ही आदमी मृत्यु को अपने सीने से लगाकर संसार में आता है। जन्म और मृत्यु दोनों साथ-साथ हैं। लोग अपने बच्चे की या अपनी वर्षगांठ मनाते हैं। यह वर्षगांठ मनाना एक मोह-माया है, एक पागलपन है। जब अपनी या अपने किसी परिजन की वर्षगांठ मनाते हैं तो इसका मतलब है कि एक वर्ष का समय खत्म हो गया। एक वर्ष उसका कम हो गया। अरे, पगले आदमी! वर्षगांठ क्या मनाते हो, पश्चाताप करो कि हम कहां बहे जा रहे हैं। आत्मकल्याण के लिए उत्साह मन में भरो, अपने को भुलाओ मत और अपने को धोखा मत दो।

लोग जन्मपत्री बनवाते और देखते हैं, लेकिन यह जन्मपत्री जन्मपत्री नहीं शोकपत्री है। इस शोकपत्री को लोग बारम्बार पढ़ते और पढ़वाते हैं। लोग ग्रह दशा का विचार खूब करते हैं और सोचते हैं कि क्या होगा, क्या न होगा। अरे, ग्रहदशा क्या दिखाते हो। आज तक की ग्रहदशा खत्म हो गयी। अगर आज साठ वर्ष के हैं तो साठ वर्ष की ग्रहदशा में क्या रखा रहा और आगे की जो शेष है उसमें भी क्या रखा है। इस ग्रहदशा में कुछ नहीं रखा है इसलिए ग्रहदशा कभी न दिखाओ।

कभी किसी को अपना हाथ मत दिखाओ कि हाथ में क्या लिखा है। यहां तो अनादिकाल से जन्म प्रवाह है। मनुष्य शिशु के रूप में मां के गर्भ में गोल-मटोल पड़ा रहता है। उसके हाथ, उसकी हथेली मुड़ी-सिकुड़ी रहती है। इसलिए मुड़ी-सिकुड़ी होने के कारण उसमें बल पड़ जाता है, सलवटें पड़ जाती हैं और रेखाएं बन जाती हैं। इसमें कुछ रखा नहीं है। इसलिए इसके चक्कर में मत पड़ो। दूसरे की तकदीर देखनेवाला आदमी अपनी ही तकदीर नहीं जानता है। जो दिनभर दूसरे की भाग्यरेखा देखता है वह अपनी भाग्यरेखा नहीं जानता है।

—क्रमशः